(1) पहला अखिल बंगाल छात्र सम्मेलन 1928 — जवाहरलाल नेहरू
(2) मानवेंद्रनाथ राय [पहले भारतीय] कम्यूनिस्ट इंटरनेशनल का नेतृत्व-वर्ग
(3) कानपुर षड्यंत्र 1924 — मुजफ्फर अहमद - श्रीपाद अमृत डांगे (कम्यूनिस्ट आरोप)
(4) कम्युनिस्ट पार्टी — 1925
(5) बारदोली सत्याग्रह — 1928 — सरदार वल्लभ भाई पटेल
(6) टाटा कारखाने में हड़ताल का समाधान — सुभाष चन्द्र बोस
(7) काकोरी षड्यंत्र — 1925 राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह (फांसी)
(8) R.S.S. — 1925

अध्याय 13 17+4

स्वराज्य के लिए संघर्ष : II

(9) समाजवाद — 1927
(10) कांग्रेस में वामपंथ का उदय — जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस

नई शक्तियों का अविर्भाव

वर्ष 1927 में राष्ट्रीय आंदोलन में फिर से शक्ति पाने के अनेक संकेत देखे गए । इसी वर्ष समाजवाद की नई प्रवृति का भी उदय हुआ । मार्क्सवाद और दूसरे समाजवादी विचार बहुत तेजी से फैले । राजनीतिक दृष्टि से इस शक्ति की अभिव्यक्ति कांग्रेस के अंदर एक वामपंथ के उदय के रुप में हुई । इस नई प्रवृति के नेता जवाहरलाल नेहरु और सुभाषचद्र बोस थे । इस वामपंथ ने अपना ध्यान साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष तक ही सीमित नहीं रखा । साथ ही साथ उसने पूंजीपतियों और जमींदारों के आंतरिक वर्गीय शोषण का सवाल भी उठाया ।

भारत के नौजवान सक्रिय हो रहे थे । पूरे देश में नौजवान सभाएं बन रही थीं और छात्रों के सम्मेलन हो रहे थे । पहला अखिल-बंगाल छात्र सम्मेलन अगस्त 1928 में जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में हुआ । इसके बाद देश में अनेक दूसरे छात्र संगठन बने तथा सैंकड़ो छात्र-युवा सम्मेलन आयोजित किए गए । इसके अलावा भारत के युवा राष्ट्रवादी धीरे-धीरे समाजवाद की तरफ आकर्षित होने लगे और देश जिन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बुराइयों से पीड़ित था, उनके लिए दूरगामी हल सुझाने लगे । उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता का कार्यक्रम भी सामने रखा तथा उसे लोकप्रिय बनाया। तीसरे, देश में समाजवादी और कम्युनिस्ट गुटों की स्थापना हुई । रुसी क्रांति की विख्यात घटना ने अनेक युवा राष्ट्रवादियों को आकर्षित किया था । उनमें से अनेक गांधीवादी राजनीतिक विचारों और कार्यक्रमों से असंतुष्ट थे। वे मार्गदर्शन पाने के लिए समाजवादी विचारधारा की ओर मुड़े मानवेंद्रनाथ राय कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नेतृत्व-वर्ग में चुने गए;

जवाहर लाल नहरु आर सुभाषचद बास

इसके लिए चुने जाने वाले वे पहले भारतीय थे । 1924 में सरकार ने मुजफ्फर अहमद और श्रीपाद अमृत डागे को गिरफ्तार करके उन पर कम्युनिस्ट विचारों के प्रचार का आरोप लगाया, और उन्हें तथा कुछ और लोगों को लेकर कानपुर षडयंत्र का मुकदमा चलाया । 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई । इसके अलावा देश के अनेक भागों में मजदूर-किसान पार्टियां बनीं । इन पार्टियों और समूहों ने मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार किया । लेकिन साथ ही वे लोग राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस के अभिन्न अंग भी थे।

किसान और मजदूरों में भी पुनः हलचल मच रही थी । संयुक्त प्रांत में बंटाईदारी के कानूनों में संशोधन के लिए बंटाईदारों ने बड़े पैमान पर

(11) हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की स्थापना — अक्तुबर 1924
(12) हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ — 1928 — चंद्रशेखर आजाद

Scanned with CamScanner

(1) साइमन कमीशन —— 1927
30 अक्तूबर 1928 (2) लाठी चार्ज —— लाला लाजपतराय का निधन
स्वराज्य के लिए संघर्ष-II (3) भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु —— साण्डर्स
1928 (4) 8 अप्रैल 1929 - भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त —— "बहरों को सुनाना"

आंदोलन चलाया । ये बंटाईदार लगान में कमी, बेदखली से सुरक्षा तथा कर्ज में राहत चाहते थे । गुजरात के किसानों ने जमीन की मालगुजारी बढ़ाने के सरकारी प्रयासों का विरोध किया । बारदोली का प्रसिद्ध सत्याग्रह इसी समय हुआ । 1928 में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों ने टैक्स न देने का आंदोलन चलाया और अंत में अपनी मांगें मनवाने में सफल रहे। अखिल-भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर संघों का तेजी से विकास हुआ । 1928 में अनेक हड़तालें हुई। खड़गपुर के रेलवे वर्कशाप में दो माह तक एक लंबी हड़ताल चली । दक्षिण भारतीय रेल मजदूरों ने भी हड़ताल की । जमशेदपुर में टाटा के लोहा-इस्पात कारखाने में भी एक हड़ताल हुई । इस हड़ताल के समाधान में सुभाष चंद्र बोस की महत्वपूर्ण भूमिका रही । इस काल की सबसे प्रमुख हड़ताल बंबई की कपड़ा मिलों में हुई, जहां लगभग डेढ़ लाख मजदूर पांच महीनों से अधिक समय तक हड़ताल पर रहे । यह हड़ताल कम्युनिस्टों के नेतृत्व में हुई। 1928 में हुई हड़तालों में पांच लाख से अधिक मजदूरों ने भाग लिया ।

इस नई लहर का एक और संकेत क्रांतिकारियों के आंदोलन की गतिविधियों में देखने को मिला। अब यह आंदोलन भी समाजवाद की ओर झुक रहा था। प्रथम असहयोग आंदोलन की असफलता के कारण रूका हुआ क्रांतिकारी आंदोलन फिर से उठ खड़ा हुआ था। एक अखिल भारतीय सम्मेलन के बाद अक्तूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति के लिये संगठन के उद्देश्य से हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की स्थापना हुई। सरकार ने इस पर एक कड़ा प्रहार किया। क्रांतिकारी युवकों को बड़ी संख्या में गिरफ्तार करके उन पर काकोरी षडयंत्र केस (1925) नामक मुकदमा चलाया गया। सत्रह लोगों को लंबी-लंबी जेल की सजाएं हुई, चार को आजीवन कारावास का दंड मिला, तथा रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकल्लाह समेत चार लोगों को फांसी दे दी गई। क्रांतिकारी जल्द ही समाजवादी विचारों के प्रभाव में आ गए, और 1928 में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में उन्होंने अपने संगठन का नाम बदलकर हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ (हिसप्रस) कर दिया।

वे अब धीरे-धीरे व्यक्तिगत वीरता के कामों और हिंसात्मक गतिविधियों से भी दूर हटने लगे। लेकिन 30 अक्तूबर 1928 को साइमन कमीशन विरोधी एक

अशफाकुल्ला

प्रदर्शन पर पुलिस के बर्बर लाठी चार्ज के कारण एक आकस्मिक परिवर्तन आया । इसमें लाठियों की चोट खाकर पंजाब के महान नेता लाला लाजपतराय शहीद हो गए । युवक इससे क्रुद्ध हो उठे और 17 दिसंबर 1928 को भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और राजगुरु ने लाठी चार्ज का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी साडर्स को गोलियों से भून दिया ।

हिसप्रस के नेताओं ने यह भी निर्णय किया कि अपने बदले हुए राजनीतिक उद्देश्यों तथा जन-क्रांति की आवश्यकता के बारे में जनता को बतलाएं । परिणामस्वरूप 8 अप्रैल 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय धारा-सभा में एक बम फेंका । बम से किसी को नुकसान नहीं पहुंचा; उसे जान-बूझकर ऐसा बनाया गया था कि किसी को चोट न आए । इस काम का उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं था, बल्कि आतंकवादियों के एक पर्चे के अनुसार "बहरों को सुनाना" था । भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त चाहते तो बम फेंकने के बाद आसानी से भाग निकलते, मगर उन्होंने जान-बूझकर

Scanned with CamScanner

(1) चटगांव सरकारी शास्त्रागार पर हमला 1930 सूर्यसेन
(2) भूख हड़ताल में मृत्यु ——— जतिनदास
(3) भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु ——— 23 मार्च 1931 को फाँसी

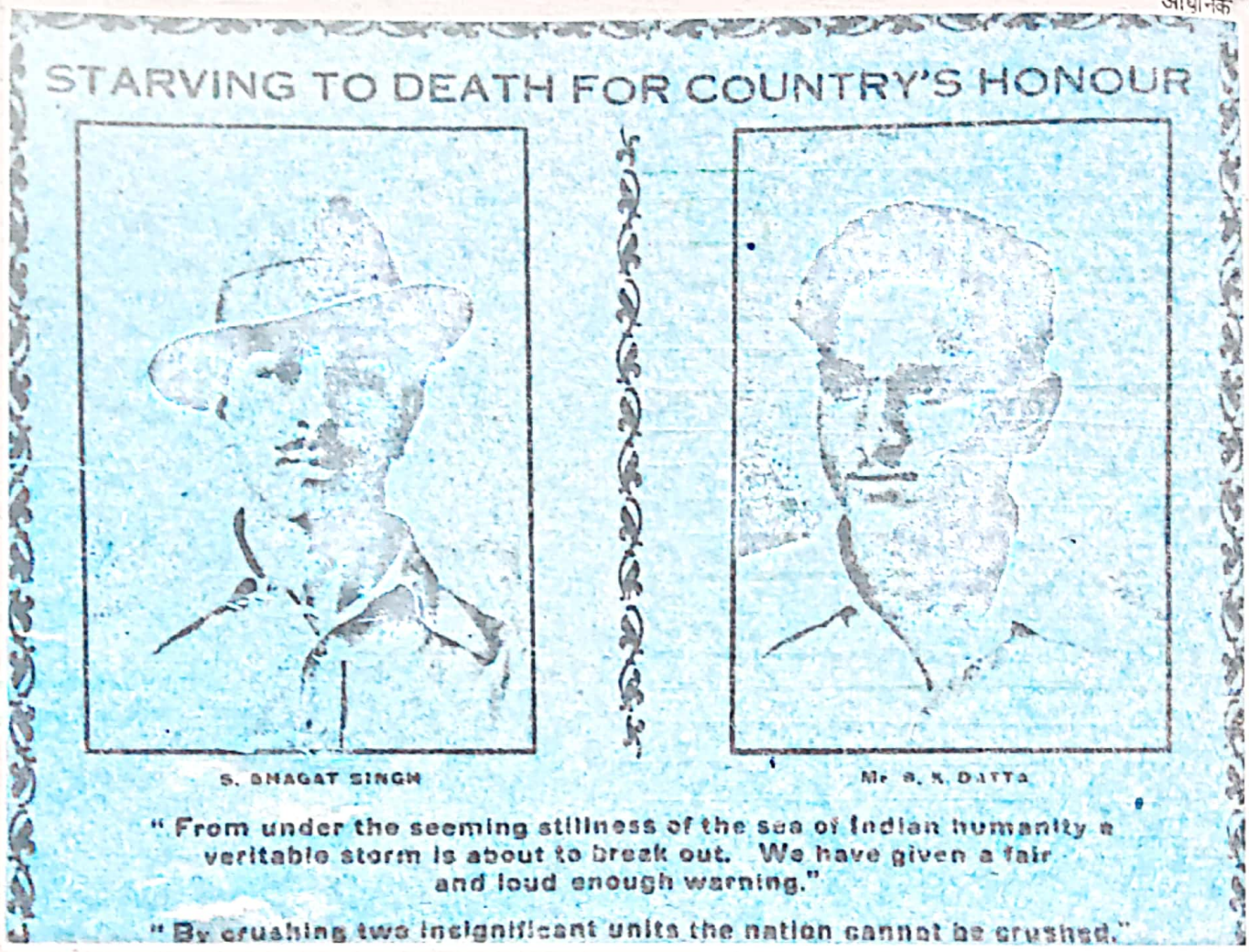

भगत सिंह, बुटुकेश्वर दत्त आदि की भूख हड़ताल के दौरान निकाले गए पोस्टर का एक हिस्सा

अपने को गिरफ्तार करवा क्योंकि वे क्रांतिकारी प्रचार के लिए अदालत का एक मंच के रूप में उपयोग करना चाहते थे ।

बंगाल में भी क्रांतिकारी आतंकवाद की गतिविधियां एक बार फिर उभरीं । अप्रैल 1930 में चटगांव के सरकारी शस्त्रागार पर क्रांतिकारियों ने योजनाबद्ध ढंग से एक बड़ा छापा मारा । इसका नेतृत्व मास्टर सूर्यसेन कर रहे थे । अलोकप्रिय सरकारी अधिकारियों पर हुए हमलों में यह पहला हमला था । बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता उसमें युवतियों की भागीदारी थी। चटगांव के क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के सूचक थे । उनका काम व्यक्तिगत नहीं सामूहिक था और उसका उद्देश्य औपनिवेशिक शासन के अंगों पर प्रहार करना था ।

सरकार ने क्रांतिकारियों पर एक तीखा प्रहार किया। उनमें से अनेकों गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर अनेकों प्रसिद्ध मुकदमें चलाए गए । भगतसिंह तथा कुछ और लोगों पर सांडर्स की हत्या का मुकद्दमा भी चला । इन युवक क्रांतिकारियों ने अदालतों में दिए गए अपने बयानों से तथा अपने निर्भीक और अवज्ञापूर्ण व्यवहार से जनता का दिल जीत लिया। उनके बचाव के लिए कांग्रेसी नेता आगे आए जो वैसे अहिंसा के समर्थक थे । जेलों की अमानवीय परिस्थितियों के विरोध में उनकी भूख हड़तालें खास तौर पर प्रेरणाप्रद थीं । राजनीतिक बंदियों के रूप में उन्होंने जेलों में अपने साथ सम्मानित तथा सुसंस्कृत व्यवहार किए जाने की मांग की । ऐसी ही एक भूख हड़ताल में 63 दिनों की एतिहासिक भूख-हड़ताल के बाद एक दुबले-पतले युवक क्रांतिकारी जतीनदास शहीद हुए । जनता के देशव्यापी विरोध के बावजूद भगतसिंह सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च 1931 को फांसी दे दी गई । फांसी से कुछ दिन पहले जेल

Scanned with CamScanner

(1) नौजवान भारत सभा — 1926 — भगत सिंह प्रथम सदस्य

सुपरिटेंडेंट को लिखे गए एक पत्र में इन तीन क्रांतिकारियों ने कहा था : "बहुत जल्द ही अंतिम संघर्ष की दुंदुभि बजेगी । इसका परिणाम निर्णायक होगा । हमने इस संघर्ष में भाग लिया है और हमें इस पर गर्व है ।"

अपने दो अंतिम पत्रों में 23 वर्षीय भगतसिंह ने समाजवाद में अपनी आस्था भी व्यक्त की । वे लिखते हैं : "किसानों को केवल विदेशी शासन ही नहीं बल्कि जमींदारों और पूंजीपतियों के जुए से भी स्वयं को मुक्त कराना होगा ।" 3 मार्च 1931 को भेजे गए अपने अंतिम संदेश में उन्होंने घोषणा की कि भारत में संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक कि "मुटठी भर शोषक अपने स्वार्थो के लिए साधारण जनता की मेहनत का शोषण करते रहेंगे । इससे कोई बहस नहीं है कि ये शोषक शुद्ध रुप से ब्रिटिश पूंजीपति हैं, ब्रिटिश और भारतीय मिलकर शोषण करते हैं, या ये शुद्ध रुप से भारतीय हैं ।" भगतसिंह ने समाजवाद की एक वैज्ञानिक परिभाषा की कि इसका अर्थ पूंजीवाद तथा वर्गीय शासन का अंत

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 1930 के बहुत पहले ही उन्होंने तथा उनके साथियों ने आंतकवाद का त्याग कर दिया था । 2 फरवरी 1931 को लिखे गए अपने राजनीतिक वसीयतनामें में उन्होंने घोषणा की : "देखने में मैंने एक आंतकवादी की तरह कार्य किया है । लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूं . . . मैं अपनी पूरी शक्ति से यह घोषणा करना चाहूंगा कि मैं आतंकवादी नहीं हूं और शायद अपने क्रांतिकारी जीवन के आरंभिक दिनों को छोड़कर मैं कभी आंतकवादी नहीं था । और मुझे पूरा विश्वास है कि इन विधियों से कुछ भी हासिल नहीं कर सकते ।"

भगतसिंह पूरी तरह और चेतन रुप से धर्मनिरपेक्ष भी थे । वे अकसर अपने साथियों से कहते थे कि सांप्रदायिकता भी उतना ही बड़ा शत्रु है जितना कि उपनिवेशवाद, और इसका सख्ती से मुकाबला करना होगा । 1926 में उन्होंने पंजाब में नौजवान भारत सभा की स्थापना में भाग लिया था और इसके प्रथम

मेरठ षडयंत्र के अभियुक्त

Scanned with CamScanner

(1) चंद्रशेखर आजाद - 27 फरवरी 1931 —— इलाहाबाद के एक पार्क में मारे
(2) मेरठ षड्यंत्र —— 1929 —— 31 मजदूर को जेल की सजा ✓3 अंग्रेज
(3) इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन नवंबर 1927 —— साइमन कमीशन
(4) नेहरू रिपोर्ट 1928 —— मोती लाल नेहरू

सचिव बने थे। भगतसिंह ने सभा के जो नियम तैयार किए थे उनमें दो नियम इस प्रकार थे : "सांप्रदायिक विचार फैलाने वाले सांप्रदायिक संगठनों या अन्य पार्टियों से कोई संबंध न रखना," और "लोगों को यह समझाना कि धर्म व्यक्तिगत आस्था का विषय है तथा इस प्रकार उनमें सामान्य सहिष्णुता की भावना जगाना, तथा इसी विचार के अनुसार कार्य करना।"

क्रांतिकारी आतंकवाद का आंदोलन बहुत जल्द समाप्त हो गया, हालांकि इक्की-दुक्की घटनाएं अनेक वर्षों तक जारी रहीं। चंद्रशेखर आजाद 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस से मुकाबला करते हुए मारे गए। बाद में इस पार्क का नाम आजाद पार्क रखा गया। सूर्यसेन फरवरी 1933 में गिरफ्तार कर लिए गए और कुछ समय बाद उन्हें फांसी दे दी गई। सैंकड़ों दूसरे क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें लंबी-लंबी सजाएं दी गईं। इनमें से अनेकों को अंडमान के सेलुलर जेल में भेज दिया गया।

इस तरह तीसरे दशक के अंत तक एक नई राजनीतिक परिस्थिति उभरने लगी थी। वायसराय लार्ड इर्विन ने बाद में इन वर्षों के बारे में लिखा, "कोई ऐसी नई शक्ति अब कार्यरत थी जिसके महत्व को अभी तक उन लोगों ने भी पूरी तरह नहीं समझा है जिनका भारत संबंधी ज्ञान बीस-बीस या तीस-तीस साल पुराना है।" सरकार इस नई प्रवृति को कुचलने पर आमादा थी। जैसा कि हमने देखा, क्रांतिकारियों को निर्ममता के साथ कुचल दिया गया। उभरते मजदूर और कम्युनिस्ट आंदोलनों के साथ भी इसी तरह का वर्ताव किया गया। मार्च 1929 में 31 प्रमुख मजदूर और कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया; इनमें तीन अंग्रेज भी थे। फिर इन पर चार वर्षों तक मुकदमा चलाया गया, जिसे मेरठ षड्यंत्र का मुकद्दमा कहा जाता है, जो 4 वर्षों तक चला और मुकद्दमें की समाप्ति पर इनको लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गई।

साइमन कमीशन का बहिष्कार: आंदोलन के इस नए चरण को बल तब मिला, जब नवंबर 1927 में ब्रिटिश सरकार ने इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन किया, जिसे आम तौर पर साइमन कमीशन कहा जाता है जो इसके अध्यक्ष थे। इसका उद्देश्य आगे संवैधानिक सुधार के प्रश्न पर विचार करना था। इस कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज थे। सभी वर्गों के भारतीयों ने इस घोषणा का विरोध किया। इस बात पर उन्हें सबसे अधिक क्रोध था कि कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं रखा गया था, और इसके पीछे यह धारणा काम कर रही थी कि स्वशासन के लिए भारतीयों की योग्यता-अयोग्यता का फैसला विदेशी करेंगे। दूसरे शब्दों में, सरकार के इस काम को आत्म-निर्णय के सिद्धांत का उल्लंघन समझा गया तथा ऐसा माना गया कि भारतीयों के आत्मसम्मान को जान-बूझ कर चोट पहुंचाई गई है। 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन की अध्यक्षता डा. अंसारी साहब कर रहे थे, उसमें राष्ट्रीय कांग्रेस ने "हर कदम पर और हर रूप में" इस कमीशन के बहिष्कार का निर्णय किया। मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा ने भी कांग्रेस के फैसले का समर्थन किया। वास्तव में, अस्थायी तौर पर ही सही, साइमन कमीशन ने देश के सभी वर्गों और दलों को एक बार फिर एकताबद्ध कर दिया। राष्ट्रवादियों के साथ एकजुटता जतलाने के लिए मुस्लिम लीग ने मिले-जुले चुनाव मंडलों के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया, इस शर्त के साथ कि मुसलमानों के लिए कुछ सीटें आरक्षित रखी जाएं।

सभी महत्वपूर्ण भारतीय नेताओं और दलों ने परस्पर एकजुट होकर तथा सांविधानिक सुधारों की एक वैकल्पिक योजना बनाकर साइमन कमीशन की चुनौती का जवाब देने का प्रयास किया। प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्ताओं के दर्जनों सम्मेलन और साझी बैठकें आयोजित की गई। इसका परिणाम नेहरू रिपोर्ट के रूप में सामने आया जिसके प्रमुख निर्माता मोती लाल नेहरू थे। इसे अगस्त 1928 में अंतिम रूप दिया गया। दुर्भाग्य से कलकत्ता में दिसंबर 1928 में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन रिपोर्ट को स्वीकार न कर सका। मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा और सिख लीग के कुछ सांप्रदायिक रुझान वाले नेताओं ने इसे लेकर आपत्तियां कीं। इस तरह सांप्रदायिक दलों ने राष्ट्रीय एकता का दरवाजा बंद कर दिया। इसके बाद निरंतर सांप्रदायिकता का विकास हुआ।

यह भी ध्यान रहे कि राष्ट्रवादियों की राजनीति और सांप्रदायवादियों की राजनीति में एक बुनियादी खाई मौजूद थी। राष्ट्रवादी देश के लिए राजनीतिक अधिकार तथा स्वाधीनता पाने के लिए विदेशी सरकार के खिलाफ एक राजनीतिक संघर्ष चला रहे थे। हिंदू या मुस्लिम सांप्रदायवादियों के साथ बात नहीं थी। उनकी मांगें राष्ट्रवादियों को ही संबोधित थीं;

(5) 1927 कांग्रेस अधिवेशन —— मद्रास [डा० अंसारी अध्यक्ष]
(6) मुस्लिम लीग व हिंदू महासभा ने कांग्रेस का समर्थन

Scanned with CamScanner

मद्रास में साइमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शन

दूसरी ओर वे समर्थन और सहायता के लिए आम तौर पर विदेशी सरकार का ही मुंह ताकते थे। ऐसा अक्सर देखा गया कि वे कांग्रेस से लड़ते थे किंतु अंग्रेजी सरकार से सहयोग करते रहते थे।

सर्वदलीय सम्मेलन की कार्यवाही से कहीं बहुत अधिक महत्वपूर्ण साइमन कमीशन के विरोध में जनता का उभार था। कमीशन के भारत पहुंचने पर एक शक्तिशाली राष्ट्रव्यापी विरोध आंदोलन उठ खड़ा हुआ और राष्ट्रवादी उत्साह तथा एकता नई ऊंचाइयों तक पहुंची।

3 फरवरी को कमीशन के बंबई पहुंचने पर एक अखिल भारतीय हड़ताल की गई। कमीशन जहां–जहां भी गया, वहीं हड़तालों और काले झंडे दिखाकर तथा 'साइमन, वापस जाओ' के नारे के साथ उसका स्वागत किया गया। इस अवसर पर जनता के विरोध को कुचलने के लिए सरकार ने निर्मम दमन तथा पुलिस–कार्यवाहियों का सहारा लिया।

साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन तात्कालिक रूप में एक व्यापक राजनीतिक संघर्ष को जन्म न दे सका। कारण कि राष्ट्रीय आंदोलन के अघोषित मगर सर्वमान्य नेता, अर्थात गांधीजी को विश्वास न था कि संघर्ष का समय आ गया है। पर जनता के उत्साह को अधिक समय तक बांधकर नहीं रखा जा सका। अब एक बार फिर देश संघर्ष के लिए कमर कस चुका था।

Scanned with CamScanner

(1) 1928 कलकत्ता कांग्रेस में ———— गाँधीजी शामिल (मोतीलाल अध्यक्ष)
(2) 1929 लाहौर अधि० ———— जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष — पूर्ण स्वराज्य

नागरिक अवज्ञा आंदोलन

नमक कानून तोड़ा

12 मार्च 1930 दांडी मार्च ——— 78 अनुयायी
साबरमती आश्रम से ——— दांडी 6 अप्रैल

The Pledge of Independence

As taken by the People of India on Purna Swaraj Day, January 26, 1930

We believe that it is the inalienable right of the Indian people, as of any other people, to have freedom and to enjoy the fruits of their toil and have the necessities of life, so that they may have full opportunities of growth. We believe also that if any government deprives a people of these rights and oppresses them, the people have a further right to alter it or to abolish it. The British Government in India has not only deprived the Indian people of their freedom but has based itself on the exploitation of the masses, and has ruined India economically, politically, culturally and spiritually. We believe therefore that India must sever the British connection and attain Purna Swaraj or complete independence.

India has been ruined economically. The revenue derived from our people is out of all proportion to our income. Our average income is seven pice per day, and of the heavy taxes we pay 20% are raised from the land revenue derived from the peasantry and 3% from the salt tax, which falls most heavily on the poor.

Village industries, such as hand spinning, have been destroyed, leaving the peasantry idle for at least four months in the year, and dulling their intellect for want of handicrafts, and nothing has been substituted, as in other countries, for the crafts thus destroyed.

Customs and currency have been so manipulated as to heap further burdens on the peasantry. British manufactured goods constitute the bulk of our imports. Customs duties betray clear partiality for British manufactures, and revenue from them is used not to lessen the burden on the masses but for sustaining a highly extravagant administration. Still more arbitrary has been the manipulation of the exchange ratio which has resulted in millions being drained away from the country.

Politically, India's status has never been so reduced as under the British regime. No reforms have given real political power to the people. The tallest of us have to bend before foreign authority. The rights of free expression of opinion and free association have been denied to us and many of our countrymen are compelled to live in exile abroad and cannot return to their homes. All administrative talent, is killed and the masses have to be satisfied with petty village offices and clerkships.

Culturally, the system of education has torn us from our moorings and our training has made us hug the very chains that bind us.

Spiritually, compulsory disarmament has made us unmanly and the presence of an alien army of occupation, employed with deadly effect to crush in us the spirit of resistance, has made us think that we cannot look after ourselves or put up a defence against foreign aggression, or even defend our homes and families from the attacks of thieves, robbers and miscreants.

We hold it to be a crime against man and God to submit any longer to a rule that has caused this fourfold disaster to our country. We recognise, however, that the most effective way of gaining our freedom is not through violence. We will therefore prepare ourselves by withdrawing, so far as we can, all voluntary association from the British Government, and will prepare for civil disobedience, including non-payment of taxes. We are convinced that if we can but withdraw our voluntary help and stop payment of taxes without doing violence, even under provocation, the end of this inhuman rule is assured. We therefore hereby solemnly resolve to carry out the Congress instructions issued from time to time for the purpose of establishing Purna Swaraj.

26जनवरी 1930में समूचे देश में जनता द्वारा निकाले गए जुलूसों के अवसर पर लिए गए स्वतंत्रता के लिए शपथ का पाठ

Scanned with CamScanner

(1) मोतीलाल — 1928
(2) जवाहरलाल — 1929 — पूर्ण स्वराज्य
(3) 31 दिसम्बर 1929 — तिरंगा झण्डा लहराया गया

पूर्ण स्वराज्य : जनता की इस नई भावना को जल्द ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना लिया । गांधीजी सक्रिय राजनीति में वापस लौट आए और दिसंबर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन में शामिल हुए । कांग्रेस का पहला काम जुझारू वामपंथ से मेल-मिलाप करना था । 1929 के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरु को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया । इस घटना का एक रोमानी पहलू भी था । मोतीलाल नेहरु 1928 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे और राष्ट्रीय आंदोलन के आधिकारिक प्रमुख के रूप में उनका स्थान अब उनके पुत्र ने ले लिया था । इस तरह आधुनिक इतिहास में एक विशिष्ट परिवार की विजय हुई ।

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में इस नई, जुझारु भावना को आवाज मिली । इस अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव ने पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया । 31 दिसंबर 1929 को स्वाधीनता का नया-नया स्वीकृत तिरंगा झंडा लहराया गया । 26 जनवरी 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया । उसके बाद यह दिवस हर साल मनाया जाने लगा, जब लोग यह शपथ लेते थे कि ब्रिटिश शासन की "अधीनता अब और आगे स्वीकार करना मानवता और ईश्वर के प्रति अपराध" होगा । इस अधिवेशन ने एक नागरिक अवज्ञा आंदोलन भी छेड़ने की घोषणा की । लेकिन इसने संघर्ष का कोई कार्यक्रम नहीं तैयार किया । यह काम महात्मा गांधी पर छोड़ दिया गया और पूरे कांग्रेस संगठन को उनकी आज्ञा के अधीन कर दिया गया । गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन एक बार फिर सरकार के मुकाबले खड़ा हुआ । देश अब एक बार फिर आशा, उल्लास और मुक्त होने की दृढ़ भावना से भर उठा ।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन

दूसरा नागरिक अवज्ञा आंदोलन 12 मार्च 1930 को गांधीजी के प्रसिद्ध दांडी मार्च के साथ आरंभ हुआ। इस दिन 78 चुने हुए अनुयायियों को साथ लेकर गांधीजी साबरमती आश्रम से चले, और लगभग 375 किलोमीटर दूर, गुजरात के समुद्र-तट पर स्थित दांडी गांव पहुंचे । उनकी यात्रा, उनके भाषणों तथा जनता पर उनके प्रभाव की रिपोर्टें प्रतिदिन समाचारपत्रों में छपती रहीं । रास्ते में पड़ने वाले गांवों के सैकड़ों अधिकारियों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिए ।

गांधीजी 6 अप्रैल को दांडी पहुंचे, समुद्र-तट से मुट्ठी भर नमक उठाया, और इस प्रकार नमक-कानून को तोड़ा । यह इस बात का प्रतीक था कि भारतीय जनता अब ब्रिटिश कानूनों और ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जीने के लिए तैयार नहीं है । गांधीजी ने घोषणा की :

> भारत में ब्रिटिश शासन ने इस देश को नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विनाश के कगार तक पहुंचा दिया है । मैं इस शासन को एक अभिशाप मानता हूं । मैं इस शासन-प्रणाली को नष्ट करने पर आमादा हूं . . . अब राजद्रोह मेरा धर्म बन चुका है । हमारा संघर्ष एक अहिंसक युद्ध है । हम किसी की हत्या नहीं करेंगे, मगर इस शासन रुपी अभिशाप को नष्ट होते देखना हमारा धर्म है ।

आंदोलन अब तेजी से फैल चला । पूरे देश में नमक-कानून तोड़े गए । फिर उसके बाद महाराष्ट्र, कर्नाटक और मध्य भारत में जंगल-कानून तोड़े गए, और पूर्वी भारत में ग्रामीण जनता ने चौकीदारी कर अदा करने से इनकार कर दिया । देश में हर जगह जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी और कर अदा करने से इनकार करने लगी । लाखों भारतीयों ने सत्याग्रह किया । देश के अनेक भागों में किसानों ने जमीन की मालगुजारी और लगान देने से इनकार कर दिया। उनकी जमीनें जब्त कर ली गईं । इस आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता स्त्रियों की भागीदारी थी । हजारों स्त्रियाँ घरों के अंदर से बाहर निकलीं और सत्याग्रह में भाग लिया । विदेशी वस्त्र या शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना देने में उनकी सक्रिय भूमिका रही । जुलूसों में वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलीं ।

आंदोलन बढ़कर भारत के एकदम उत्तर-पश्चिमी छोर तक भी पहुंचा और बहादुर और शेरदिल पठानों में जोश सा भर गया । "सीमांत गांधी" के नाम से जाने जाने वाले खान अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में पठानों ने खुदाई खिदमतगार (ईश्वर के सेवक) नामक संगठन बना लिया, जो जनता के बीच "लाल कुर्ती वाले" कहलाते थे । ये लोग अहिंसा और स्वाधीनता संघर्ष को समर्पित थे । इस समय पेशावर में एक महत्वपूर्ण घटना घटी । गढ़वाली सिपाहियों के दो प्लाटूनों ने अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से मना कर दिया इसके नेता चंद्र

(4) पहला स्वाधीनता दिवस 26 जनवरी 1930
(5) खुदाई खिदमतगार — खान अब्दुल गफ्फार खान
(6) सीमांत गांधी — लाल कुर्ती वाले — खान अब्दुल गफ्फार खान

Scanned with CamScanner

खान अब्दुल गफ्फार खां

सिंह गढ़वाली थे। इसके बदले में उनका कोर्ट मार्शल किया गया और लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गईं। इस घटना से स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रवाद की भावना भारतीय सेना तक में फैलने लगी थी जो ब्रिटिश शासन का प्रमुख आधार थी।

इसी तरह आंदोलन की गूंज देश के एकदम पूर्वी कोनों में सुनाई पड़ी। इसमें मणिपुरी जनता की बहादुरी से भरपूर भागीदारी रही। नागालैंड ने रानी गिडालू जैसी वीरांगना को जन्म दिया। इस वीर बाला ने मात्र 13 वर्ष की आयु में कांग्रेस और गांधीजी के आह्वान पर विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठा लिया। 1932 में यह युवा रानी पकड़ी गई और उसे आजीवन कारावास की सजा मिली।

बंबई में सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज किया जा रहा है।

Scanned with CamScanner

(1) पहला गोलमेज सम्मेलन —— 1930 — बहिष्कार
(2) गांधी-इरविन समझौता [भगत सिंह फांसी]
(3) दूसरा गोलमेज सम्मेलन —— 1931 — नागरिक अवज्ञा आंदोलन रोक दिया
(4) तीसरा गोलमेज सम्मेलन —— 1932

रानी के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा असम के विभिन्न जेलों की अंधेरी कोठरियों में गुजर गया और उसे मुक्ति केवल 1947 में स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा मिली। उसके बारे में जवाहरलाल नेहरू ने 1937 में लिखा था : "एक दिन वह आएगा जब भारत उसे याद करेगा और उसका सम्मान करेगा।"

सरकार ने इस राष्ट्रीय संघर्ष के साथ पहले जैसा ही व्यवहार किया। निर्मम दमन, निहत्थे स्त्री–पुरुषों पर लाठी और गोली की बौछार, आदि के द्वारा इसे कुचलने के प्रयास किए गए। गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओं समेत 90,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। समाचारों पर कड़ा सेंसर लगाकर राष्ट्रवादी प्रेस का गला घोंट दिया गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पुलिस की गोलीबारी में 110 से अधिक लोग मारे गए और 300 से अधिक घायल हुए। गैरसरकारी आंकड़ों के अनुसार मृतकों की संख्या इससे कहीं बहुत अधिक थी। फिर लाठी चार्ज में हजारों लोगों के सर फूटे और हड्डियां टूटीं। खासकर दक्षिण भारत में भयानक किस्म का दमन देखने को मिला। पुलिस अकसर लोगों को खादी या गांधी टोपी पहने देखकर भी पीट देती थी। अंततः जनता ने आंध्र में एलोरा नामक स्थान पर प्रतिरोध किया और वहां पुलिस की गोलियों से अनेकों लोग मारे गए।

इस बीच 1930 में ब्रिटिश सरकार ने लंदन में भारतीय नेताओं और सरकारी प्रवक्ताओं का पहला गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया। इसका उद्देश्य साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करना था। लेकिन कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार किया और उसकी कार्यवाहियां बेकार गईं। भारत के बारे में

(5) न लगान न टैक्स —— 1930, दिसम्बर कांग्रेस
(6) गोदावरी भीड़ पर गोली —— गांधी जी तस्वीर के कारण

सिविलनाफरमानी के दौरान कलकत्ता की गलियों में गश्त लगाती पुलिस, नवंबर 1930 यह चित्र इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज' में छपा था।)

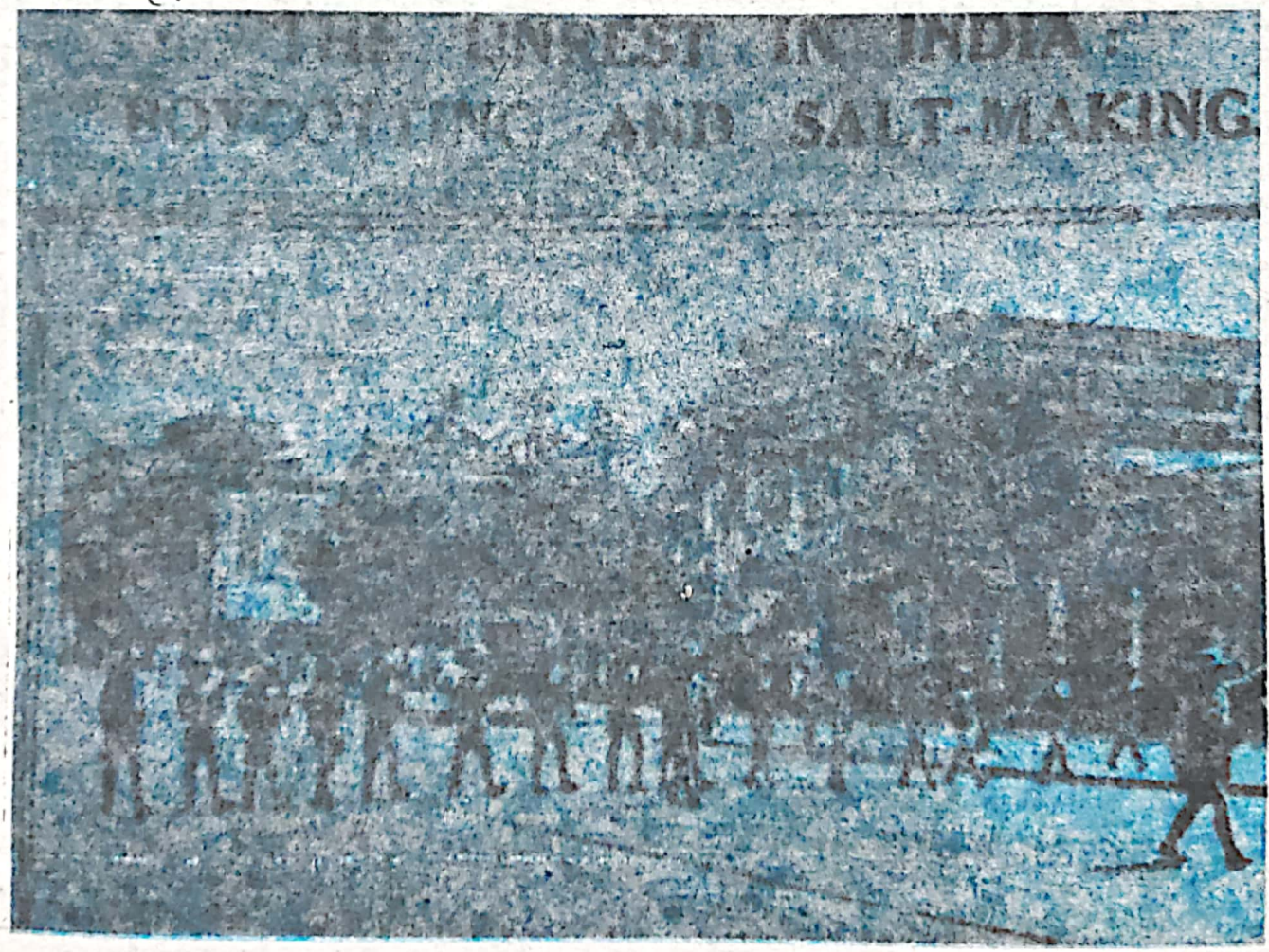

(1) द्वितीय गोलमेज 1931 — डोमिनियन स्टेटस
(2) एक राजनीतिक नेता के रूप में महात्मा गाँधी असफल रहे हैं — 1933
218 → सुभाष चंद्र बोस व विट्ठल भाई पटेल

कांग्रेस के बिना सम्मेलन यूं ही था जैसे राम के बिना कोई रामलीला ।

अब सरकार ने कांग्रेस से किसी सहमति पर पहुंचने के लिए बातचीत शुरु की ताकि कांग्रेस इस सम्मेलन में भाग ले । अंत में लार्ड इर्विन और गांधीजी के बीच मार्च 1931 में एक समझौता हुआ । सरकार अहिंसक रहने वाले राजनीतिक बंदियों को रिहा करने पर तैयार हो गई । उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार तथा विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना देने का अधिकार भी मान लिए गए । तब कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन रोक दिया और दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने पर तैयार हो गई । अनेक कांग्रेसी नेता, और खासकर युवक वामपंथी गांधी–इर्विन समझौते के विरोधी थे, क्योंकि सरकार ने एक भी प्रमुख राष्ट्रवादी मांग नहीं मानी थी । सरकार ने यह मांग तक नहीं मानी थी कि भगतसिंह तथा उनके दो साथियों की फांसी की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए । लेकिन गांधीजी को विश्वास था कि लार्ड इर्विन और ब्रिटिश भारतीय मांगों पर बातचीत के बारे में गंभीर थे। सत्याग्रह की उनकी धारणा में यह भी शामिल था कि प्रतिपक्षी को हृदय–परिवर्तन का प्रदर्शन करने का अवसर दिया जाए । उनकी रणनीति इस समझ पर आधारित थी कि कोई भी जन–आंदोलन निश्चित ही बहुत संक्षिप्त होगा और बहुत दिनों तक जारी न रह सकेगा क्योंकि जनता की बलिदान की क्षमता अनंत नहीं होती । परिणामस्वरूप कानून विरोधी जनसंघर्ष के बाद एक निष्क्रिय चरण का आरंभ हुआ जिसमें आंदोलन को कानून की सीमाओं में रहकर ही चलाया जाना था। इसके अलावा गांधीजी ने बराबरी के आधार पर बातचीत की थी और इस प्रकार कांग्रेस की प्रतिष्ठा को सरकार की प्रतिष्ठा के बराबर ला दिया था । इसलिए वे कांग्रेस के कराची अधिवेशन में इस समझौते का अनुमोदन कराने में सफल रहे।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के दौरे के समय गांधीजी के साथ ब्रिटेन के मजदूर वर्ग की महिलाएँ

गांधीजी सितंबर 1931 में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैंड गए । लेकिन उनकी जोरदार वकालत के बावजूद सरकार ने डोमिनियन स्टेटस तत्काल देकर उनके आधार पर स्वतंत्रता की बुनियादी राष्ट्रवादी मांग को मानने से इनकार कर दिया ।

इस बीच देश के अनेक भागों में किसानों में असंतोष की लहर फैल चुकी थी । विश्वव्यापी मंदी के कारण खेतिहर पैदावारों के दाम गिर गए थे और लगान और मालगुजारी का बोझ उनके लिए असह्य हो चला था । संयुक्त प्रांत में लगान में कमी और बंटाईदारों की बेदखली के खिलाफ कांग्रेस ने आंदोलन चलाया । दिसंबर 1930 में कांग्रेस ने "न लगान, न टैक्स" का अभियान चलाया । उत्तर में सरकार ने 26 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरु को गिरफ्तार कर लिया । पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में सरकार की मालगुजारी संबंधी नीति के खिलाफ खुदाई खिदमतगार किसान आंदोलन चला रहे थे । 24 दिसंबर को उनके नेता खान अब्दुल गफ्फार खान भी धर लिए गए । किसान आंदोलन बिहार, आंध्र, मध्य प्रांत, बंगाल और पंजाब में भी फैल रहे थे । भारत वापस आने पर गांधीजी के सामने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को दोबारा आरंभ करने के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा ।

अब सरकार के प्रमुख नए वायसराय लार्ड वेलिंगडन थे जिनका मत था कि कांग्रेस के साथ समझौता करना बहुत बड़ी गलती थी । उनकी सरकार कांग्रेस को कुचलने के लिए आमादा और तैयार थी । वास्तव में भारतीय नौकरशाही नरम तो कभी पड़ी ही नहीं थी । गांधी–इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर के फौरन बाद आंध्र के पूर्वी गोदावरी जिले में एक भीड़ पर गोली चली थी और चार लोग मारे गए थे – सिर्फ इसलिए कि उन्होंने गांधीजी का

(1) 1933

Scanned with CamScanner

एक चित्र लगाया था। 4 जनवरी 1932 को गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता फिर धर लिए गए और कांग्रेस गैरकानूनी घोषित कर दी गई। सामान्य कानून निलंबित कर दिए गए और प्रशासन विशेष अध्यादेशों के सहारे चलने लगा। पुलिस ने आतंक का नंगा खेल खेला और स्वाधीनता-सेनानियों पर अनगिनत अत्याचार किए गए। एक लाख से ऊपर सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए और हजारों की जमीनों, मकानों और दूसरी जायदादों को जब्त किया गया। राष्ट्रवादी साहित्य प्रतिबंधित कर दिया गया। राष्ट्रवादी समाचारपत्रों पर दोबारा सेंसरशिप लागू कर दिया गया।

अंत में सरकारी दमन सफल रहा क्योंकि इसे सांप्रदायिक और दूसरे प्रश्नों पर भारतीय नेताओं के बीच मतभेद होने से सहायता मिली। नागरिक अवज्ञा आंदोलन धीरे-धीरे बिखर गया। कांग्रेस ने आधिकारिक रुप में मई 1933 में इसे निलंबित कर दिया और मई 1934 में इसे वापस ले लिया। गांधीजी एक बार फिर सक्रिय राजनीति से अलग हो गए। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच एक बार फिर निराशा फैल गई। बहुत पहले, 1933 में ही सुभाष चंद्र बोस और विट्ठलभाई पटेल ने घोषणा कर दी थी कि "एक राजनीतिक नेता के रूप में महात्माजी असफल रहे है।" वायसराय वेलिंगडन ने भी कहा कि "कांग्रेस 1930 की तुलना में निश्चित ही कम अच्छी स्थिति में है और जनता पर उसका प्रभाव घटा है।" मगर वास्तव में ऐसा न था। यह सही है कि स्वाधीनता लाने में आंदोलन असफल रहा था, लेकिन जनता का और राजनीतीकरण करने और स्वाधीनता संघर्ष के सामाजिक आधारों को और मजबूत बनाने में वह सफल रहा था। जैसा कि एक ब्रिटिश पत्रकार एच. एन. ब्रेल्सफोर्ड ने लिखा है, हाल के संघर्ष के फलस्वरुप भारतीयों ने "अपने मन को मुक्त कर लिया है और अपने दिलों में स्वाधीनता प्राप्त कर ली है।" नागरिक अवज्ञा आंदोलन के वास्तविक परिणाम और वास्तविक प्रभाव का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि राजनीतिक बंदी जब 1934 में रिहा हुए तो जनता ने उनका वीरों के रूप में स्वागत किया।

राष्ट्रवादी राजनीति, 1935-39

1935 का भारत सरकार कानून

नवंबर 1932 में जब कांग्रेस संघर्ष के मंझधार में थी तब लंदन में एक बार फिर कांग्रेस के बिना तीसरे गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें हुए विचार-विमर्श का परिणाम अंततः 1935 के भारत सरकार कानून के रुप में सामने आया। इस कानून में एक नए अखिल भारतीय संघ की स्थापना तथा प्रांतों में प्रांतीय स्वायत्तता के आधार पर एक नई शासनप्रणाली की व्यवस्था थी। यह संघ फेडरेशन ब्रिटिश भारत के प्रांतों तथा रजवाड़ों पर आधारित था। केंद्र में दो सदनों वाली एक संघीय विधायिका की व्यवस्था थी जिसमें रजवाड़ों को भिन्न-भिन्न प्रतिनिधित्व दिया गया था। मगर रजवाड़ों के प्रतिनिधियों का चुनाव जनता द्वारा नहीं किया जाता बल्कि उन्हें वहां के शासक मनोनीत करते। ब्रिटिश भारत की केवल 14 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त था। इस विधायिका में राष्ट्रवादी तत्वों को काबू में रखने के लिए राजा-महाराजाओं का उपयोग किया गया था, मगर फिर भी इसे कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी गई थी। रक्षा तथा विदेश विभाग इसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर थे। जबकि दूसरे विषयों पर गवर्नर-जनरल का विशेष नियंत्रण था। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार करती और वे उसी के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतों को अधिक स्थानीय अधिकार दिए गए थे। प्रांतीय विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों का प्रांतीय प्रशासन के हर विभाग पर नियंत्रण था। उन्हें कानूनी गतिविधियों पर निषेधाधिकार तथा अपने कानून बनाने के अधिकार थे। इसके अलावा नागरिक प्रशासन और पुलिस पर उनका पूरा नियंत्रण था। यह कानून राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका, क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति अभी भी ब्रिटिश सरकार के हाथों में केंद्रित थी। विदेशी शासन पहले की तरह ही जारी था, हां, कुछेक लोकप्रिय और चुने हुए नेता भारत के ब्रिटिश प्रशासन के ढांचे में और जुड़े। कांग्रेस ने "पूरी तरह निराशाजनक" कहकर इस कानून की निंदा की।

इस कानून के संघीय पक्ष को कभी लागू नहीं किया गया, पर प्रांतीय पक्ष जल्द ही लागू कर दिया गया। इस 1935 के नए कानून का कड़ा विरोध करने के बावजूद कांग्रेस ने इसके अंतर्गत होने वाले चुनावों में भाग लेने का निर्णय किया, और इस घोषित लक्ष्य के साथ कि वह इस कानून को अलोकप्रियता सिद्ध करेगी। कांग्रेस के तूफानी चुनाव-प्रचार को जनता का व्यापक समर्थन मिला।

Scanned with CamScanner

हालांकि गांधीजी ने एक भी चुनाव-सभा को संबोधित नहीं किया । फरवरी 1937 में हुए इन चुनावों में यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई कि जनता का एक बड़ा भाग कांग्रेस के साथ है । कांग्रेस ने अधिकांश प्रांतों में भारी जीत हासिल की । ग्यारह में से सात प्रांतों में जुलाई 1937 में कांग्रेसी मंत्रीमंडल बने । बाद में कांग्रेस ने दो प्रांतों में साझी सरकार भी बनाई । केवल बंगाल और पंजाब प्रांत में ही गैरकांग्रेसी मंत्रीमंडल बन सके । पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी ने और बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग ने मिलकर सरकार बनाई ।

कांग्रेसी मंत्रिमंडल

स्पष्ट है कि कांग्रेस मंत्रिमंडल भारत में ब्रिटिश प्रशासन के बुनियादी साम्राज्यवादी चरित्र को बदलने और एक नया युग आरंभ करने में असफल रहे । फिर भी 1935 के कानून के अंतर्गत उन्हें जो सीमित अधिकार प्राप्त थे उनके सहारे उन्होंने जनता की दशा सुधारने के सचमुच प्रयास किए । कांग्रेसी मंत्रियों ने अपना वेतन खुद घटाकर 500 रुपये प्रति माह कर दिया । उनमें से अधिकांश रेलों में दूसरे या तीसरे दर्जे में चलते । ईमानदारी और जनसेवा के नए मानदंड उन्होंने स्थापित किए । अनेक क्षेत्रों में उन्होंने सकारात्मक निर्णय लिए । उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया, प्रेस और अतिवादी संगठनों पर लगे प्रतिबंध हटाए, मजदूर संघों और किसान सभाओं को उन्होंने काम करने और बढ़ने की छूट दी, पुलिस के अधिकार कम किए, और क्रांतिकारी आतंकवादियों समेत राजनीतिक कैदियों को बड़ी संख्या में रिहा कर दिया । बंटाईदारों के अधिकारों और बंटाईदारी की सुरक्षा के लिए उन्होंने अनेक कृषि-कानून बनाए । मजदूर संघों ने पहले से अधिक मुक्त महसूस किया और मजदूरों की मजदूरी बढ़वाने में सफल रहे । कांग्रेसी सरकारों ने चुने हुए क्षेत्रों में नशाबंदी लागू की, हरिजन-कल्याण के काम किए, तथा प्राथमिक, उच्च और तकनीकी शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य पर पहले से अधिक ध्यान दिया । खादी और दूसरे ग्रामीण उद्योगों को समर्थन दिया गया । आधुनिक उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिला । सांप्रदायिक दंगों से सख्ती से निपटना कांग्रेसी मंत्रिमंडल की एक प्रमुख उपलब्धि थी । सबसे बड़ा लाभ तो मानसिक लाभ था । लोगों को लगा कि वे विजय और स्वशासन की हवा में सांस ले रहे हैं । जो लोग अभी हाल तक जेलों में बंद थे, अब वे मंत्री के रूप में शासन कर रहे थे । क्या यह एक बड़ी उपलब्धि नहीं थी ?

1935-39 के काल में कुछ और महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएं भी घटीं जिन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन और कांग्रेस को एक तरह से नया मोड़ दिया ।

समाजवादी विचारों का प्रसार

इस सदी के चौथे दशक में कांग्रेस के अंदर और बाहर समाजवादी विचारों का तेजी से प्रसार हुआ । 1929 में अमरीका में एक बहुत बड़ी आर्थिक मंदी आई जो धीरे-धीरे पूरी दुनिया में छा गई । दूसरे पूंजीवादी देशों में उत्पादन और विदेशी व्यापार में बहुत बड़ी गिरावट आई । इससे जनता की आर्थिक स्थिति खराब हो गई और बड़े पैमाने पर बेरोजगारी फैली । एक समय ऐसा हो गया था जब, ब्रिटेन में 30 लाख, जर्मनी में 60 लाख और अमरीका में 120 लाख लोग बेरोजगार थे । दूसरी ओर सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति इसके ठीक विपरीत थी । वहां गिरावट तो नहीं ही आई बल्कि 1929 और 1936 के बीच पहली दो पंचवर्षीय योजनाएं सफलतापूर्वक लागू की गईं जिससे सोवियत औद्योगिक उत्पादन चार गुना से भी अधिक हो गया । इस तरह विश्वव्यापी मंदी के कारण पूंजीवादी प्रणाली बदनाम हो गई और लोगों का ध्यान मार्क्सवाद, समाजवाद और आर्थिक योजना के विचार की ओर गया । परिणामस्वरूप अधिकाधिक लोग, खासकर युवक, मजदूर और किसान समाजवादी विचारों की ओर खिंचने लगे ।

राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक दिनों से ही उसका झुकाव निर्धन जनता की ओर था । 1917 की रूसी क्रांति के प्रभाव से, राजनीतिक मंच पर गांधीजी के उदय से, तथा दूसरे और तीसरे दशकों में शक्तिशाली वामपंथी गुटों के बनने से यह प्रवृत्ति और मजबूत हुई । राष्ट्रीय आंदोलन के अंदर और पूरे देश के पैमाने पर एक समाजवादी भारत की तस्वीर को लोकप्रिय बनाने में जवाहरलाल नेहरू ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । कांग्रेस के अंदर वामपंथी प्रवृत्ति के मजबूत होने का प्रमाण यह था कि 1929, 1936 और 1937 में जवाहरलाल नेहरू तथा 1938 और 1939 में सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए विजयी हुए । नेहरू का तर्क था कि

Scanned with CamScanner

(1) कांग्रेस समाजवादी पार्टी — 1934 आचार्य नरेन्द्र व जयप्रकाश नारायण
(2) राष्ट्रीय योजना समिति — 1938
(3) 1935 पूरनचंद के नेतृत्व में — कम्यूनिस्ट पार्टी का गठन

राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ जनता की आर्थिक शक्ति, खासकर मेहनती किसानों की सामंती शोषण से मुक्ति होनी चाहिए ।

1936 में लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरु ने कांग्रेस से आग्रह किया कि वह समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाए तथा खुद को किसान और मजदूर वर्गों के और भी पास लाए । उनका विश्वास था कि मुस्लिम जनता को उनके प्रतिक्रियावादी सांप्रदायिक नेताओं से दूर हटाने का यही सबसे अच्छा उपाय था । उन्होंने कहा :

> मेरा विश्वास है कि विश्व की समस्याओं और भारत की समस्याओं का एकमात्र समाधान समाजवाद है, और जब मैं इस शब्द का उपयोग करता हूं तो इसे अस्पष्ट मानवतावादी नहीं बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिकअर्थ में करता हूं . . . इसका मतलब है हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में व्यापक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन, कृषि और उद्योग के निहित स्वार्थों का उन्मूलन, तथा भारत के सांमती और निरंकुश रजवाड़ों की प्रणाली की समाप्ति । इसका अर्थ है कि एक संकुचित अर्थ को छोड़कर निजी संपत्ति का उन्मूलन तथा वर्तमान मुनाफा प्रणाली की जगह सहकारी सेवा के उच्चतर आदर्श की स्थापना । अंततः इसका अर्थ है हमारी सहज वृत्तियों, आदतों और इच्छाओं में परिवर्तन । संक्षेप में, इसका अर्थ है वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था से मूलगामी अर्थ में भिन्न एक नई सभ्यता ।

देश में मूलगामी शक्तियों के प्रसार का प्रमाण जल्द ही कांग्रेस के कार्यक्रम तथा नीतियों में भी देखा गया । इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान–बिंदु मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर वह प्रस्ताव था जिसे कांग्रेस ने कराची अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरु के आग्रह पर पारित किया । प्रस्ताव में घोषणा की गई कि "जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए राजनीतिक स्वाधीनता में लाखों–लाख भूखे लोगों की वास्तविक आर्थिक स्वाधीनता भी सम्मिलित होनी चाहिए । प्रस्ताव में जनता को मूल नागरिक अधिकारों, जाति–पंथ–लिंग के भेद के बिना कानून के आगे सबकी समानता, सार्वभौमिक बालिग मताधिकार के आधार पर चुनाव, तथा मुक्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की जमानत दी गई थी । लगान व मालगुजारी में काफी कमी, लाभहीन जोतों के लिए लगान माफी, खेतिहरों के कर्जों में तथा सूदखोरों के नियंत्रण से राहत, जीवनयापन–योग्य मजदूरी समेत मजदूरों के लिए बेहतर दशाओं, महिला मजदूरों के लिए काम के सीमित घंटों और सुरक्षा, मजदूरों तथा किसानों के लिए संगठित होने और यूनियन बनाने के अधिकार, तथा प्रमुख उद्योगों, खदानों और यातायात के साधनों पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण जैसे वादे भी इस प्रस्ताव में किए गए थे ।

कांग्रेस के अंदर मूलगामी प्रवृत्ति का एक और प्रमुख रुप कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन के प्रस्तावों व 1936 के चुनाव घोषणापत्र में दिखने को मिला । इसमें कृषि–प्रणाली का मूलगामी रुपांतरण करने, लगान और मालगुजारी में काफी कमी करने, ग्रामीण ऋण कम करने तथा आसान शर्तों पर ऋण देने के वादे किए गए थे इसके साथ ही सामंती वसूलियों को समाप्त करने, बंटाईदारों को बंटाईदारी की सुरक्षा देने, खेत मजदूरों को जीवनयापन–योग्य मजदूरी दिलाने, तथा मजदूर संघ और किसान सभाएं बनाने तथा हड़ताल करने के अधिकार देने के भी वादे किए गए थे । 1945 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक प्रस्ताव पारित करके जमींदारी उन्मूलन का भी अनुमोदन किया था ।

1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस थे । इस समय कांग्रेस ने आर्थिक योजना का विचार अपनाया और जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति बनाई । नेहरु, दूसरे वामपंथियों तथा गांधी ने भी चंद लोगों के हाथों में धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए बड़े उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की बात की । वास्तव में, चौथे दशक की एक प्रमुख घटना यह थी कि गांधीजी ने भी मूलगामी आर्थिक नीतियों को अधिकाधिक स्वीकार किया । 1933 में नेहरू से सहमत होकर उन्होंने कहा कि "निहित स्वार्थों में एक बड़े परिवर्तन के बिना जनता की स्थिति को कभी नहीं सुधारा जा सकता ।" उन्होंने "जमीन जोतने वाले की" का सिद्धांत भी मान लिया और 1942 में घोषणा की कि "जमीन उनकी है जो उस पर मेहनत करते हैं, और किसी की नहीं ।"

कांग्रेस के बाहर समाजवादी प्रवृत्ति का एक परिणाम यह भी था कि 1935 के बाद पूरनचंद्र जोशी के नेतृत्व में कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रसार हुआ, और 1934 में आचार्य नरेंद्रदेव तथा जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की

Scanned with CamScanner

(1) फारवर्ड ब्लाक —— सुभाष चंद्र बोस
(2) अखिल भारतीय किसान सभा 1936 स्वामी सहजानंद सरस्वती

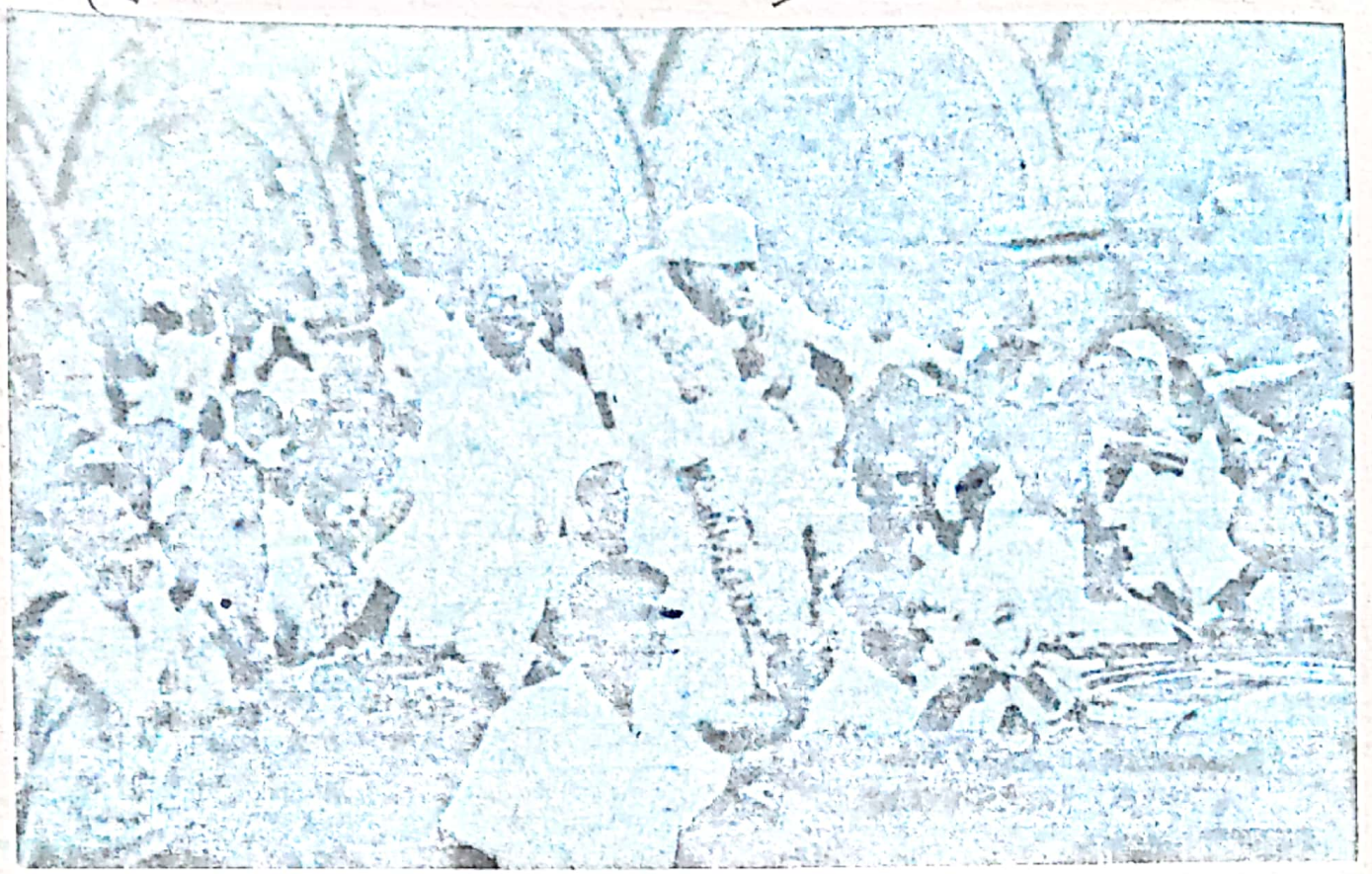

फारवर्ड ब्लाक बनाने के बाद जनवरी 1940 में सुभाष चंद्र बोस

स्थापना हुई । 1938 मे गांधीजी के विरोध के बावजूद सुभाषचंद्र बोस दोबारा काग्रेस के अध्यक्ष चुने गए । लेकिन काग्रेस वर्किंग कमेटी के अंदर गांधीजी और उनके समर्थकों के विरोध के कारण बोस अप्रैल 1939 में काग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने को मजबूर हो गए । फिर उन्होंने और उनके अनेक वामपंथी समर्थकों ने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की। 1939 तक आते-आते काग्रेस के अंदर मौजूद वामपंथ सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एक-तिहाई वोट जुटा सकने में समर्थ हो चुका था । इसके अलावा चौथे और पांचवें दशक में समाजवाद भारत के अधिकांश राजनीतिक चेतना-प्राप्त युवकों का विश्वास अपना रूप ले चुका था । चौथे दशक में आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन तथा अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हुई ।

किसान और मजदूर आंदोलन

चौथे दशक में भारत के किसानों और मजदूरों में राष्ट्रव्यापी जागरण देखने को आया । 1920-20 तथा 1930-34 के दो राष्ट्रवादी आंदोलनों ने किसानों और मजदूरों का बड़े पैमाने पर राजनीतीकरण किया था । 1929 के बाद भारत तथा शेष विश्व पर जिस आर्थिक मंदी की मार पड़ी उसने भारतीय किसान-मजदूरों की दशा भी बिगाड़ दी थी। 1932 के अंत तक खेतिहर पैदावार की कीमतें 50 प्रतिशत से अधिक गिर चुकी थीं । अब पूरे देश में किसान भूमि सुधारों, मालगुजारी और लगान में कमी, तथा कर्ज से राहत की मांग करने लगे थे । कारखानों और बागानों के मजदूर अब काम की बेहतर परिस्थितियों तथा ट्रेड यूनियन अधिकार दिए जाने की बढ़-चढ़ कर मांग कर रहे थे ।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन तथा वामपंथी पार्टियों और गुटों ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं की एक ऐसी नई पीढ़ी पैदा की जो किसानों और मजदूरों के संगठन के लिए समर्पित थी । परिणामस्वरुप शहरों में ट्रेड यूनियनों का तथा पूरे देश में, खासकर संयुक्त प्रांत, बिहार, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल और पंजाब में किसान सभाओं का तेजी से प्रसार हुआ । 1936 में स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान संगठन अखिल भारतीय किसान सभा के नाम से बना ।

(3) 1927 में जवाहरलाल —— ब्रुसेल्स
उत्पीड़ित जातीयताओं के सम्मेलन में भाग लिया

Scanned with CamScanner

(4) सम्मेलन में ——— लीग अगेंस्ट इंपीरियलिज्म की Executive Council के भी सदस्य चुन गए।

कांग्रेस और विश्व की घटनाएं

1935–39 के काल की तीसरी प्रमुख बात यह थी. कि कांग्रेस विश्व की घटनाओं में बढ़–चढ़कर दिलचस्पी लेने लगी थी । 1885 में अपनी स्थापना के समय से ही कांग्रेस ने कह था कि अफ्रीका और एशिया में ब्रिटेन के हितों की रक्षा करने के लिए भारतीय सेना और भारत के संसाधनों का प्रयोग न किया जाए । धीरे–धीरे इसने साम्राज्यवादी प्रसार के

चेकोस्लोवाकिया में 1938में इंदिरा नेहरू के साथ् जवाहर लाल नेहरू पश्चिमी शक्तियों ने म्यूनिख में उस देश के साथ विश्वासघात किया था, जवाहर लाल नेहरू ने इस घटना के पहले चेकोस्लोवाकिया गए थे।

विरोध पर आधारित एक विदेश नीति विकसित कर ली थी । फरवरी 1927 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से जवाहरलाल नेहरु ने ब्रसेल्स में आयोजित उत्पीड़ित जातीयताओं के सम्मेलन में भाग लिया । इस सम्मेलन का आयोजन आर्थिक या राजनीतिक साम्राज्यवाद से पीड़ित एशियाई, अफ्रीकी और लातीनी अमरीकी देशों के निर्वासित राजनीतिक कार्यकर्ताओं और क्रांतिकारियों ने किया था । इस सम्मेलन का उद्देश्य इन सबके साझे साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष में तालमेल बिठाना और उन्हें योजनाबद्ध रुप देना था । यूरोप के अनेक वामपंथी बुद्धिजीवियों और राजनीतिक नेताओं ने भी सम्मेलन में भाग लिया । सम्मेलन को संबोधित करते हुए नेहरु ने कहा :

> हम समझते हैं कि विभिन्न पराधीन, अर्धपराधीन और उत्पीड़ित जनगण आज जो संघर्ष चला रहे है उसमें बहुत कुछ साझा है । उनके दुश्मन भी प्रायः एक ही होते हैं, हालांकि वे कभी–कभी विभिन्न रुपों में सामने आते हैं, और उनके उत्पीड़न के लिए प्रयोग किए जाने वाले साधन भी अकसर मिलते–जुलते होते हैं ।

नेहरु इसी सम्मेलन में स्थापित "लीग अगेंस्ट इंपीरियलिज्म" की एक्जीक्यूटिव कौंसिल' के भी सदस्य चुने गए । 1927 में राष्ट्रीय कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सरकार को चेतावनी दी गई कि ब्रिटेन अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अगर कोई युद्ध छेड़ेगा तो भारत की जनता उसका समर्थन नहीं करेगी ।

चौथे दशक में कांग्रेस ने दुनिया के किसी भी भाग में जारी साम्राज्यवाद के खिलाफ एक कड़ा रुख अपनाया और एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलनों को समर्थन दिया । इसने उसे समय इटली, जर्मनी और जापान में उभरते हुए फासीवाद की निंदा की जो साम्राज्यवाद और नस्लवाद का सबसे भयानक रूप था, और इथियोपिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया तथा चीन पर फासीवादी ताकतों के हमले के खिलाफ संघर्ष में वहां की जनता का पूरा–पूरा समर्थन किया । 1937 में जब जापान ने चीन पर हमला किया तो कांग्रेस ने एक प्रस्ताव के द्वारा भारतीय जनता से आग्रह किया कि वे "चीन की जनता के प्रति अपनी सहानुभूति जताने के लिए जापानी वस्तुओं के प्रयोग से बचें ।" 1938 में कांग्रेस ने डा. एम. अटल के नेतृत्व में डाक्टरों का एक दल भी चीनी सेनाओं के साथ काम करने के लिए भेजा ।

राष्ट्रीय कांग्रेस को पूरा–पूरा विश्वास था कि भारत का भविष्य उस संघर्ष से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ा हुआ है जो एक तरफ फासीवाद तथा दूसरी तरफ स्वाधीनता, समाजवाद और जनतंत्र की शक्तियों के बीच छिड़ने वाला है । विश्व की घटनाओं के प्रति कांग्रेस में उभरते हुए दृष्टिकोण तथा दुनिया में भारत की स्थिति की चेतना को जवाहरलाल नेहरु ने 1936 के लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में सामने रखा था :

> हमारा संघर्ष वास्तव में स्वाधीनता के एक और बड़े संघर्ष का भाग था, और जो शक्तियां हमें

Scanned with CamScanner

(1) चेंबर आफ प्रिंसेज ——— 1921
(2) आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांग्रेस ——— 1927
(3) आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांग्रेस का अध्यक्ष ——— 1939 ——— जवाहरलाल नेहरू

प्रेरित कर रही थीं वे पूरी दुनिया में लाखों दूसरे लोगों को भी प्रेरित कर रही तथा कर्मक्षेत्र में ला रही थीं । संकट की स्थिति में पूंजीवाद ने फासीवाद का रुप लिया • पराधीन औपनिवेशिक देशों में साम्राज्यवाद जो कुछ बहुत पहले से रहा है, स्वयं को जन्म देने वाले कुछ देशों में ही पूंजीवाद ने भी वैसा ही रूप धारण कर लिया । फासीवाद और साम्राज्यवाद इस तरह पतनशील पूंजीवाद के दो रुप बनकर सामने आए . . . . पश्चिम में समाजवाद ने तथा पूर्वी तथा अन्य पराधीन देशों में उदीयमान राष्ट्रवाद ने फासीवाद और साम्राज्यवाद के इस गठजोड़ का विरोध किया।

कांग्रेस साम्राज्यवादी शक्तियों के किसी भी आपसी युद्ध में भारत सरकार की किसी भी रुप में भागीदारी का विरोध करेगी, इस बात पर जोर देते हुए नेहरु ने "विश्व की प्रगतिशील शक्तियों के प्रति, स्वाधीनता के लिए तथा राजनीतिक और सामाजिक बंधन तोड़ने के लिए लड़ने वालों के प्रति" अपने पूरे सहयोग का वचन दिया क्योंकि "साम्राज्यवाद और फासीवादी प्रतिक्रिया के विरोध में उनके संघर्ष से हमें यह लगता है कि हमारा संघर्ष एक साझा संघर्ष है ।"

रजवाड़ों की जनता का संघर्ष

इस काल का चौथा प्रमुख घटनाक्रम यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन रजवाड़ों तक भी फैल गया । इन रजवाड़ों में से अधिकांश में आर्थिक से, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां नरक जैसी थीं । किसान दमन के शिकार थे, मालगुजारी और कर बहुत अधिक तथा असह्य थे, शिक्षा का कोई खास प्रसार न था, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाएं एकदम पिछड़ेपन की हालत में थीं, और प्रेस की स्वतंत्रता तथा दूसरे नागरिक अधिकारों का शायद ही कोई मान हो । रजवाड़े की आय का बहुत बड़ा भाग राजा और उसके परिवार के भोग-विलास पर खर्च होता था । अनेक रजवाड़ों में भूदास-प्रथा, गुलामी और बेगार का बोलबाला था । पहले के पूरे इतिहास में आंतरिक विद्रोह या बाहरी आक्रमण की चुनौतियां इन भ्रष्ट और पतित राजा-महाराजाओं की मनमानी पर कुछ हद तक नियंत्रण रखती थीं । परंतु ब्रिटिश शासन ने राजाओं को इन दोनों खतरों से सुरक्षित बना दिया और अब वे खुलकर अपने शासन का दुरुपयोग करने लगे ।

इसके अलावा राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधा डालने तथा उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश अधिकारी भी राजाओं का इस्तेमाल करने लगे । राजा-महाराजा भी, अपनी बारी में, किसी जनविद्रोह के आगे अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सत्ता पर निर्भर थे और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति दुश्मनी का रवैया अपनाया । 1921 में चेंबर आफ प्रिंसेज की स्थापना की गई ताकि महाराजे मिल-बैठ सकें और ब्रिटिश मार्गदर्शन में अपने साझे हित के विषयों पर विचार कर सकें । 1935 के भारत सरकार कानून में भी प्रस्तावित संघीय ढांचे की योजना इस प्रकार रखी गई थी कि राष्ट्रवादी शक्तियों पर नियंत्रण बना रहे । इसमें व्यवस्था थी कि ऊपरी सदन में कुल सीटों के 2/5 पर तथा निचले सदन में 1/3 पर रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व रहेगा ।

अनेक रजवाड़ों की जनता अब जनतांत्रिक अधिकारों और लोकप्रिय सरकारों की मांग को लेकर आंदोलन करने लगी । विभिन्न रजवाड़ों में राजनीतिक गतिविधियों के तालमेल के लिए दिसंबर 1927 में ही आल इंडिया स्टेटस पीपुल्स कांफ्रेंस की स्थापना हो चुकी थी । दूसरे असहयोग आंदोलन ने रजवाड़ों की जनता पर काफी गहरा प्रभाव डाला और उन्हें राजनीतिक गतिविधियों के लिए प्रेरित किया । अनेक रजवाड़ों, खासकर राजकोट, जयपुर, कश्मीर, हैदराबाद और ट्रावनकोर में जनसंघर्ष चलाए गए । राजाओं ने इन संघर्षों का सामना निर्मम दमन के द्वारा किया । इनमें से कुछ ने सांप्रदायिकता का सहारा भी लिया । हैदराबाद के निजाम ने जन-आंदोलन को मुस्लिम-विरोधी और कश्मीर के महाराजा ने उसे हिंदू-विरोधी घोषित किया, जबकि ट्रावनकोर के महाराजा का दावा था कि जन-आंदोलन के पीछे ईसाइयों का हाथ है ।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने रजवाड़ों की जनता के संघर्ष का समर्थन किया और राजाओं से आग्रह किया कि वे जनतांत्रिक प्रतिनिधि सरकार स्थापित करें और जनता को मूलभुत नागरिक अधिकार दें । 1938 में जब कांग्रेस ने अपने स्वाधीनता के लक्ष्य को परिभाषित किया तो इसमें रजवाड़ों की स्वाधीनता को भी शामिल किया । अगले साल त्रिपुरी अधिवेशन में रजवाड़ों की जनता के आंदोलनों में और भी सक्रिय रुप से भाग लेने का उसने फैसला किया । ब्रिटिश भारत तथा रजवाड़ों के राजनीतिक संघर्षों के साझे राष्ट्रीय लक्ष्यों को सामने रखने के लिए जवाहरलाल

Scanned with CamScanner

नेहरू को 1939 में आल इंडिया स्टेटस पीपल्स कांफ्रेंस का अध्यक्ष चुना गया । रजवाड़ों की जनता के आंदोलन ने उस जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा की । इससे पूरे भारत में एकता की नई चेतना भी फैली ।

सांप्रदायिकता का विकास

पांचवां महत्वपूर्ण घटनाक्रम सांप्रदायिकता का विकास था । सीमित मताधिकार तथा अलग–अलग चुनाव मंडलों के आधार पर विधान सभाओं के लिए जो चुनाव हुए उससे एक बार फिर अलगाववादी भावनाएं पैदा हो गईं । इसके अलावा कांग्रेस अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षित अनेक सीटें जीतने में असफल रही । मुसलमानों के लिए कुल 482 सीटें आरक्षित थीं मगर कांग्रेस को इनमें केवल 26 मिलीं और उसमें भी 15 केवल पश्चिमोत्तर सीमा–प्रांत में मिलीं, हालांकि इनमें ज्यादा सीटें मुस्लिम लीग को भी नहीं मिलीं । हिंदू महासभा भी बुरी तरह हारी । इसके अलावा जमींदारों और सूदखोरों की पार्टियां भी चुनाव में धूल चाटती नजर आईं । कांग्रेस ने एक मैलगामी कृषि कार्यक्रम अपना लिया था और किसान आंदोलन फैल रहे थे – इन दो बातों को देखकर जमींदार और सूदखोर अब सांप्रदायिक पार्टियों को अपना समर्थन देने लगे । उन्होंने समझ लिया कि आम जनता को व्यापक राजनीतिक भागीदारी के युग में उनके हितों की खुलकर वकालत कर सकना अब संभव नहीं होगा । अब सांप्रदायिक पार्टियां मजबूत होने लगीं । जिन्ना के नेतृत्व में

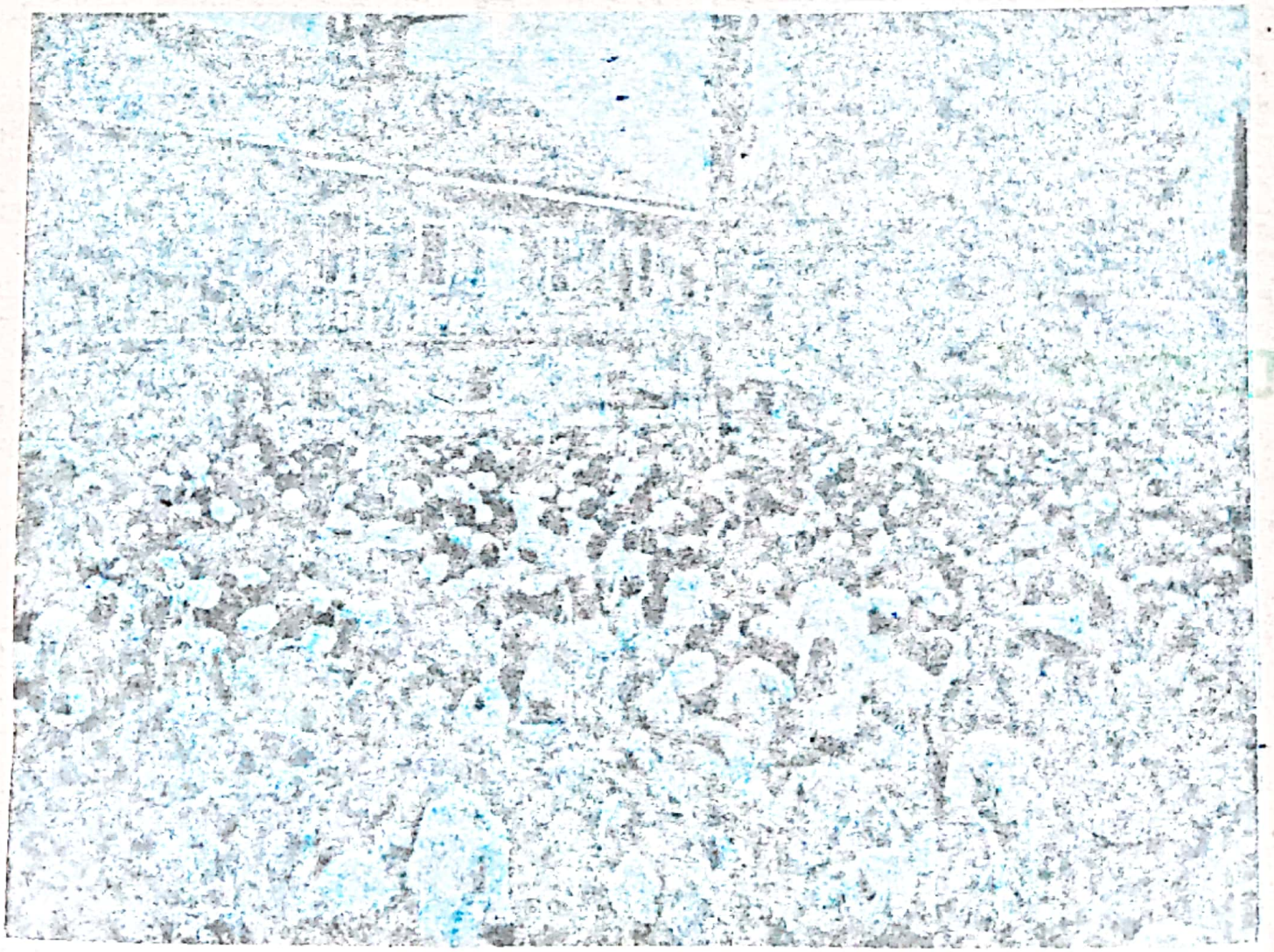

1938 में अपनी गिरफ्तारी के बाद जम्मू कश्मीर में आंदोलन के नेता शेख अब्दुल्ला लोगों को संबोधित करते हुए

Scanned with CamScanner

(1) हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं और उनका एकसाथ रह सकना असंभव है। ——— जिन्ना

(2) 1940 में मुस्लिम लीग का प्रस्ताव ——— दो राष्ट्र

मुस्लिम लीग कांग्रेस की घोर विरोधी हो गई। अब उसने यह प्रचार शुरू कर दिया कि मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बहुसंख्यक हिंदुओं में समा जाने का खतरा है। उसने इस अवैज्ञानिक और अनैतिहासिक सिद्धांत का प्रचार किया कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं और उनका एक साथ रह सकना असंभव है। 1940 में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके मांग की कि स्वाधीनता के बाद देश के दो भाग कर दिए जाएं और पाकिस्तान नाम का एक अगल राज्य बनाया जाए।

फरवरी 1939में लुधियाना में 'आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कानफ्रेंस' के अवसर पर जवाहर लाल नेहरू को एक जुलूस में ले जाया जा रहा है।

हिंदुओं के बीच हिंदू महासभा जैसे सांप्रदायिक संगठनों के अस्तित्व के कारण मुस्लिम लीग के प्रचार को और बल मिला। हिंदू एक अलग राष्ट्र है और भारत हिंदुओं का देश है, यह कहकर हिंदू संप्रदायवादियों ने मुस्लिम संप्रदायवादियों की ही बात दोहराई। इस तरह उन्होंने भी दो राष्ट्रों के सिद्धांत को मान लिया। उन्होंने इस बात का जमकर विरोध किया कि अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त सुरक्षा-व्यवस्था की जाए ताकि उन्हें बहुमत के प्रभुत्व का भय न रहे। एक तरह से हिंदू संप्रदायवाद का औचित्य और भी कम था। हर देश में धार्मिक, भाषायी या जातीय अल्पसंख्यकों को कभी न कभी ऐसा लगता रहा है कि उनकी संख्या कम होने के कारण उनके सामाजिक और सांस्कृतिक हितों को हानि पहुंच सकती है। लेकिन बहुसंख्यक संप्रदाय ने जब भी अपने वचन और कर्म से यह सिद्ध किया है कि ये भय निराधार हैं तो अल्पसंख्यकों का भय समाप्त हो गया है। परंतु जब बहुसंख्यक जनता का कोई भाग सांप्रदायिक और संकीर्ण हो जाता है और अल्पसंख्यकों के खिलाफ बोलने या कुछ करने लगता है तो अल्पसंख्यक अपने को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। तब अल्पसंख्यकों का सांप्रदायिक और संकीर्ण नेतृत्व भी मजबूत होता है। उदाहरण के लिए चौथे दशक में मुस्लिम लीग वहीं मजबूत थी, जहां मुस्लिम अल्पसंख्यक थे। इसके विपरीत पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पंजाब, सिंध और बंगाल में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे और इसलिए अपने को कुछ सुरक्षित महसूस करते थे, वहां मुस्लिम लीग कमजोर थी। दिलचस्प बात यह है कि हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने कांग्रेस के खिलाफ एक दूसरे से हाथ मिलाने में कोई संकोच नहीं किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पंजाब, सिंध और बंगाल में हिंदू संप्रदायवादियों ने कांग्रेस के विरोध में मुस्लिम लीग तथा दूसरे सांप्रदायिक संगठनों का मंत्रिमंडल बनवाने में सहायता की। सरकार-समर्थक रवैया अपनाना भी तमाम सांप्रदायिक संगठनों की एक साझी विशेषता थी। यहां हम कह दें कि हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रवाद की बात करने वाले किसी भी सांप्रदायिक संगठन या दल ने विदेशी शासन विरोधी संघर्ष में कभी कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। दूसरे धर्मों की जनता तथा राष्ट्रवादी नेताओं को ही वे अपना वास्तविक शत्रु समझते थे।

सांप्रदायिक संगठन और दल जनता की सामाजिक और आर्थिक मांगें उठाने से भी कतराते रहे जबकि राष्ट्रवादी आंदोलन, जैसा कि हमने देखा है, बढ़-चढ़कर इन मांगों को उठाता रहा। इस संबंध में वे ऊंचे वर्गों के निहित स्वार्थों का ही प्रतिनिधित्व करने लगे। बहुत पहले 1933 में ही इस बात को जवाहरलाल नेहरु ने समझ लिया था :

> आज सांप्रदायिकता का आधार राजनीतिक प्रतिक्रिया है और इसलिए हम देखते हैं कि सांप्रदायिक नेता बिना किसी अपवाद के राजनीतिक और आर्थिक मामलों में प्रतिक्रियावादी बन बैठते हैं। ऊंचे वर्गों के लोगों के संगठन यह दिखाकर कि वे धार्मिक अल्पसंख्यकों या बहुसंख्यकों की सामुदायिक मांगों के पक्षधर हैं, अपने स्वयं के वर्गीय हितों को छिपाने के प्रयास करते हैं। हिंदुओं, मुसलमानों

Scanned with CamScanner

तथा दूसरों की ओर से रखी गई विभिन्न सामुदायिक मांगों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि इनका जनता से कुछ भी लेना–देना नहीं है ।

राष्ट्रीय आंदोलन ने सांप्रदायिक ताकतों का हमेशा दृढ़ता से विरोध किया और धर्मनिरपेक्षता से उसकी प्रतिबद्धता हमेशा गहरी और संपूर्ण रही । फिर भी वह सांप्रदायिक चुनौती का सामना करने में पूरी तरह सफल न हो सका । अंत में सांप्रदायिकता देश का विभाजन कराने में सफल रही । इस असफलता की व्याख्या कैसे की जाए ? इसका एक उत्तर जो प्रायः दिया जाता है, वह यह है कि राष्ट्रवादी नेताओं ने सांप्रदायिक नेताओं से बातचीत करने और उन्हें साथ लेने के पर्याप्त प्रयास नहीं किए ।

हमारा विचार इसके ठीक विपरीत है । आरंभ से ही राष्ट्रवादी नेताओं ने सांप्रदायिक नेताओं से बातचीत पर बहुत अधिक भरोसा किया। लेकिन सांप्रदायवाद से समझौता कर सकना या उसे संतुष्ट कर सकना संभव न था । इसके अलावा, एक तरह की सांप्रदायिकता को संतुष्ट करने का प्रयास किया जाता तो प्रतिक्रिया के रुप में दूसरे तरह की सांप्रदायिकता हमेशा ही फलने–फूलने लगती । 1937 और 1939 के बीच कांग्रेस के नेताओं ने बार–बार जिन्ना से मुलाकात करके उसे मनाने का प्रयास किया । लेकिन जिन्ना ने कभी कोई ठोस मांग सामने नहीं रखी । इसके बजाए उन्होंने यह असंभव मांग रखी कि कांग्रेस माने कि वह हिंदुओं की पार्टी है और केवल हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करती है, केवल तभी वह कांग्रेस से बात करेंगे। कांग्रेस के लिए यह मांग स्वीकार करना संभव नं था, क्योंकि ऐसा करके वह अपने बुनियादी धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रवादी चरित्र को ही छोड़ देती । वास्तविकता यह है कि संप्रदायवाद को संतुष्ट करने के जितने भी प्रयास किए गए, उतनी ही अधिक उसमें उग्रता आती गई ।

वास्तव में सांप्रदायिकता को संतुष्ट करने की जरुरत नहीं थी बल्कि उसके खिलाफ एक निर्मम राजनीतिक और विचारधारात्मक संघर्ष चलाने की जरुरत थी । आवश्यकता सांप्रदायिकता के खिलाफ एक व्यापक मुहिम चलाने की थी जैसी मुहिम 1880 के बाद के दशक में औपनिवेशिक विचारधारा के

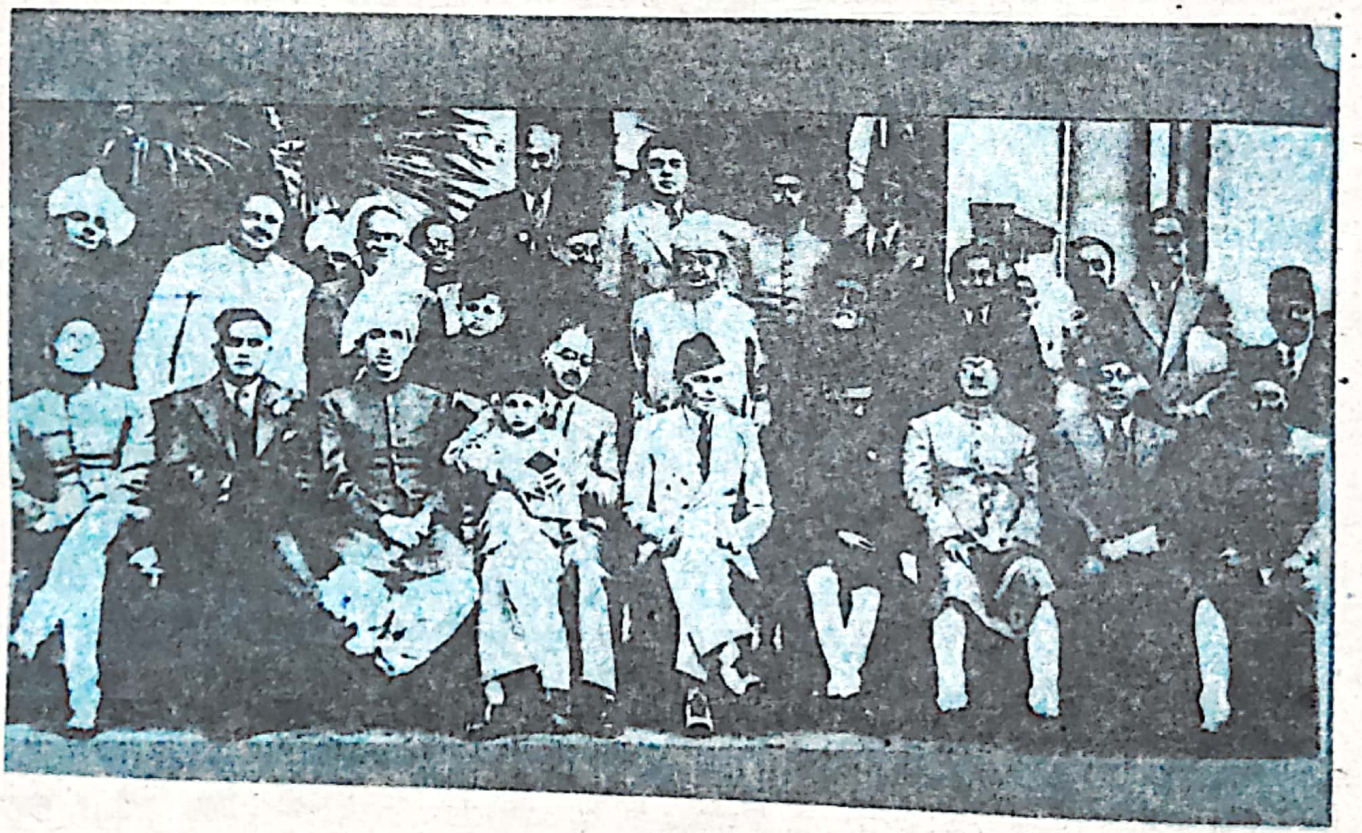

1940में लाहौर में मुहम्मद अली जिन्ना (बीच में बैठे हुए) दूसरे मुस्लिम लोग नेताओं के साथ

Scanned with CamScanner

(1) अक्तूबर 1940 —— गाँधीजी सत्याग्रह
(2) पहले सत्याग्रह करने वाले —— विनोबा भावे
(3) क्रिप्स मिशन —— 1942 ब्रिस —— लेबर पार्टी

खिलाफ चलाई गई थी। लेकिन कभी-कभार को छोड़कर राष्ट्रवादियों ने ऐसा नहीं किया। फिर भी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की सफलताओं को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। 1946-47 में विभाजन के आगे और पीछे हुए दंगों तथा सांप्रदायिक शक्तियों के पुनरुत्थान के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद भारत एक धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाने में तथा मूल रूप से एक धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था और समाज खड़ा कर सकने में सफल रहा। हिंदू साम्प्रदायिकता समाज में और राष्ट्रवादियों की कतारों तक में भी गहरे पैठी, फिर भी यह हिंदुओं के बीच इसकी शक्ति मामूली ही बनी रही। 1946-47 के दौरान धार्मिक कट्टरता तथा सांप्रदायिकता की लहर में अनेक मुसलमान बह गए, मगर कुछ दूसरे मुसलमान सांप्रदायिकता के सामने चट्टान की तरह खड़े रहे। अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, जोशीले नारे देने वाले समाजवादी नेता युसुफ मेहरअली, निर्भीक पत्रकार एस. ए. बरेलवी, इतिहासकार मुहम्मद हबीब और कुंवर मुहम्मद अशरफ, उर्दू शायरी के तूफानी पितरैल जैसे जोश मलीहाबादी, फैज अहमद फैज, सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी और कैफी आजमी, और मौलाना मदनी - ये सब ऐसे नाम हैं जो इस संबंध में हमारे सामने मिसाल बनकर उभरते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन

दूसरा विश्वयुद्ध सितंबर 1939 में आरंभ हुआ जब जर्मन प्रसारवाद की हिटलर की नीति के अनुसार नाजी जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। इसके पहले मार्च 1938 में वह अस्ट्रिया और मार्च 1939 में चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस ने हिटलर को खुश रखने के लिए सब कुछ किया था, मगर अब वे पोलैंड की सहायता करने को बाध्य हो गए। भारत की सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस या केंद्रीय धारा सभा के चुने हुए सदस्यों से परामर्श किए बिना फौरन युद्ध में शामिल हो गई।

राष्ट्रीय कांग्रेस को फासीवादी (फासिस्ट) आक्रमण के शिकार देशों से पूरी सहानुभूति थी। वह फासीवाद विरोधी संघर्ष में लोकतांत्रिक शक्तियों की सहायता करने को तैयार थी। मगर कांग्रेस के नेताओं का सवाल यह था कि एक गुलाम राष्ट्र द्वारा दूसरों के मुक्ति-संघर्ष में साथ देना किस प्रकार सभव था? इसलिए उन्होंने मांग की कि भारत को स्वाधीन घोषित किया जाए या कम से कम भारतीयों को समुचित अधिकार दिए जाएं ताकि वे युद्ध में सक्रिय भाग ले सकें। ब्रिटिश सरकार ने इस मांग को मानने से इनकार कर दिया तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों और राजा-महाराजाओं को कांग्रेस के खिलाफ खड़ा करने का प्रयास किया। इसलिए कांग्रेस ने अपने मंत्रिमंडलों को आदेश दिया कि वे त्यागपत्र दे दें। अक्तूबर 1940 में गांधीजी ने कुछ चुने हुए व्यक्तियों को साथ लेकर सीमित पैमाने पर सत्याग्रह चलाने का निर्णय किया। सत्याग्रह को सीमित इसलिए रखा गया कि देश में व्यापक उथल-पुथल न हो और ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में बाधा न पड़े। वायसराय के नाम एक पत्र में गांधीजी ने इस आंदोलन के उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार की :

> कांग्रेस नाजीवाद की विजय की उतनी ही विरोधी है जितना कि कोई अंग्रेज हो सकता है। लेकिन उसकी आपत्ति को युद्ध में उसकी भागीदारी की सीमा तक नहीं खींचा जा सकता और चूंकि आपने तथा भारत-सचिव महोदय ने घोषणा की है कि पूरा भारत स्वेच्छा से युद्ध प्रयास में सहायता कर रहा है, इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि भारत की जनता का विशाल बहुमत इसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखता। वह नाजीवाद तथा भारत पर शासन कर रही दोहरी निरंकुशता में कोई अंतर नहीं करता।

सत्याग्रह करने वाले पहले व्यक्ति विनोबा भावे थे। 15 मई 1941 तक 25,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए जा चुके थे।

1941 में विश्व की राजनीति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। पश्चिमी यूरोप तथा अधिकांश पूर्वी यूरोप में पोलैंड, बेल्जियम, हालैंड, नार्वे और फ्रांस पर अधिकार कर चुकने के बाद नाजी जर्मनी ने 22 जून 1941 को सोवियत संघ पर हमला बोल दिया। 7 दिसंबर को जापान ने पर्ल हार्बर में एक अमरीकी समुद्री बेड़े पर आकस्मिक हमला किया तथा जर्मनी और इटली की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। उसने तेजी से फिलीपीन, हिंदचीन, इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा पर अधिकार कर लिया। मार्च 1942 में रंगून पर उसका अधिकार हो गया। इससे युद्ध भारत की सीमाओं तक आ पहुंचा। हाल में

Scanned with CamScanner

रिहा हुए कांग्रेसी नेताओं ने जापानी आक्रमण की निंदा की और कहा कि अगर ब्रिटेन फौरन प्रभावी शक्ति भारतीयों को सौंप दे और युद्ध के बाद पूर्ण स्वाधीनता का वचन दे तो वे भारत की रक्षा तथा राष्ट्रों के हितों के लिए सहयोग करने को तैयार हैं ।

अब ब्रिटिश सरकार को युद्ध प्रयासों में भारतीयों के सक्रिय सहयोग की बुरी तरह आवश्यकता थी । ऐसा सहयोग पाने के लिए उसने एक कैबिनेट मंत्री सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा । क्रिप्स पहले लेबर पार्टी के उग्र सदस्य और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के पक्के समर्थक थे । हालांकि क्रिप्स ने घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य यहां "जितनी जल्दी संभव हो स्वशासन की स्थापना करना" था, फिर भी उनके तथा कांग्रेसी नेताओं की लंबी बातचीत टूट गई । ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह मांग मानने से इनकार कर दिया कि वास्तविक शक्ति तत्काल भारतीयों को सौंपी जाए । दूसरी तरफ भारतीय नेता इस बात से संतुष्ट नहीं हुए कि उनसे भविष्य के लिए केवल वादे किए जाएँ और फिलहाल वायसराय के हाथों में निरंकुश शक्तियां बनी रहें । वे युद्ध प्रयासों में सहयोग के लिए तैयार थे, खासकर इसलिए कि जापानी आक्रमणकारियों से भारत के लिए ही खतरा पैदा हो गया था । लेकिन उन्हें लगता था कि वे यह काम तभी कर सकेंगे जब देश में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाए ।

क्रिप्स मिशन की असफलता से भारत की जनता रुष्ट हो गई । उसे फासीवाद-विरोधी शक्तियों से अभी भी पूरी सहानुभूति थी, मगर उसे लगता था कि देश की राजनीतिक स्थिति अब बर्दाश्त से बाहर हो चुकी है । युद्ध के दौरान वस्तुओं की कमी और बढ़ती कीमतों ने उसके असंतोष को और भी गहरा दिया था । अप्रैल-अगस्त 1942 के काल में तनाव लगातार बढ़ता गया । जैसे-जैसे जापानी फौजें भारत की ओर बढ़ती गईं तथा जापानी विजय का भय जनता और नेताओं को त्रस्त करने लगा और गांधीजी उतने ही अधिक जुझारु होते गए । कांग्रेस ने अब फैसला किया कि अंग्रेजों से भारतीय स्वाधीनता की मांग मनवाने के लिए सक्रिय उपाय किए जाएं । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग 8 अगस्त 1942 को बंबई में हुई जिसमें प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकार किया गया तथा इस उद्देश्य को पाने के लिए गांधीजी के नेतृत्व में एक अहिंसक जनसंघर्ष चलाने का फैसला किया गया । प्रस्ताव में घोषणा की गई कि :

> भारत के लाभ तथा संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों की सफलता, दोनों के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति आवश्यक हो गई है . . . . आधुनिक साम्राज्यवाद का प्रमुख शिकार होने के नाते भारत अब समस्या के केंद्र में आ चुका है क्योंकि भारत की स्वाधीनता से ही ब्रिटेन तथा संयुक्त राष्ट्र को परखा जाएगा और एशिया तथा अफ्रीका के जनगण में आशा और उत्साह का संचार होगा। इस तरह इस देश में ब्रिटिश शासन की समाप्ति एक जीवंत और तात्कालिक प्रश्न है जिस पर युद्ध का भविष्य तथा स्वाधीनता और जनतंत्र की सफलता निर्भर हैं । एक स्वाधीन भारत स्वाधीनता के संघर्ष में तथा नाजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने तमाम विशाल संसाधनों को झोंककर यह सफलता सुनिश्चित करेगा ।"

8 अगस्त की रात में कांग्रेसी प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा :

> इसलिए मैं अगर हो सके तो तत्काल, इसी रात, प्रभात से पहले स्वाधीनता चाहता हूं . . . . आज दुनिया में झूठ और मक्कारी का बोलबाला है . . . आप मेरी बात पर भरोसा कर सकते है कि मैं मंत्रिमंडल या ऐसी दूसरी वस्तुओं के लिए वायसराय से सौदा करने वाला नहीं हूं । मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूं . . . अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूं; आप इसे अपने दिलों में संजोकर रख लें और हर एक सांस में इसका जाप करें । वह मंत्र यह है : 'करो या मरो' ! हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएंगे या इस प्रयास में मारे जाएंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जीवित नहीं रहेंगे ।

लेकिन कांग्रेस आंदोलन चला सके, इसके पहले ही सरकार ने कड़ा प्रहार किया । 9 अगस्त को बहुत तड़के ही गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार करके अनजानी जगहों पर ले जाए गए और कांग्रेस

Scanned with CamScanner

(1) 9 अगस्त को —— गाँधीजी सहित बहुत से कांग्रेसी गिरफ्तार
(2) नेताविहीन व संगठन विहीन
(3) मद्रास व बंगाल सर्वाधिक प्रभावित

The Hindustan Times Weekly

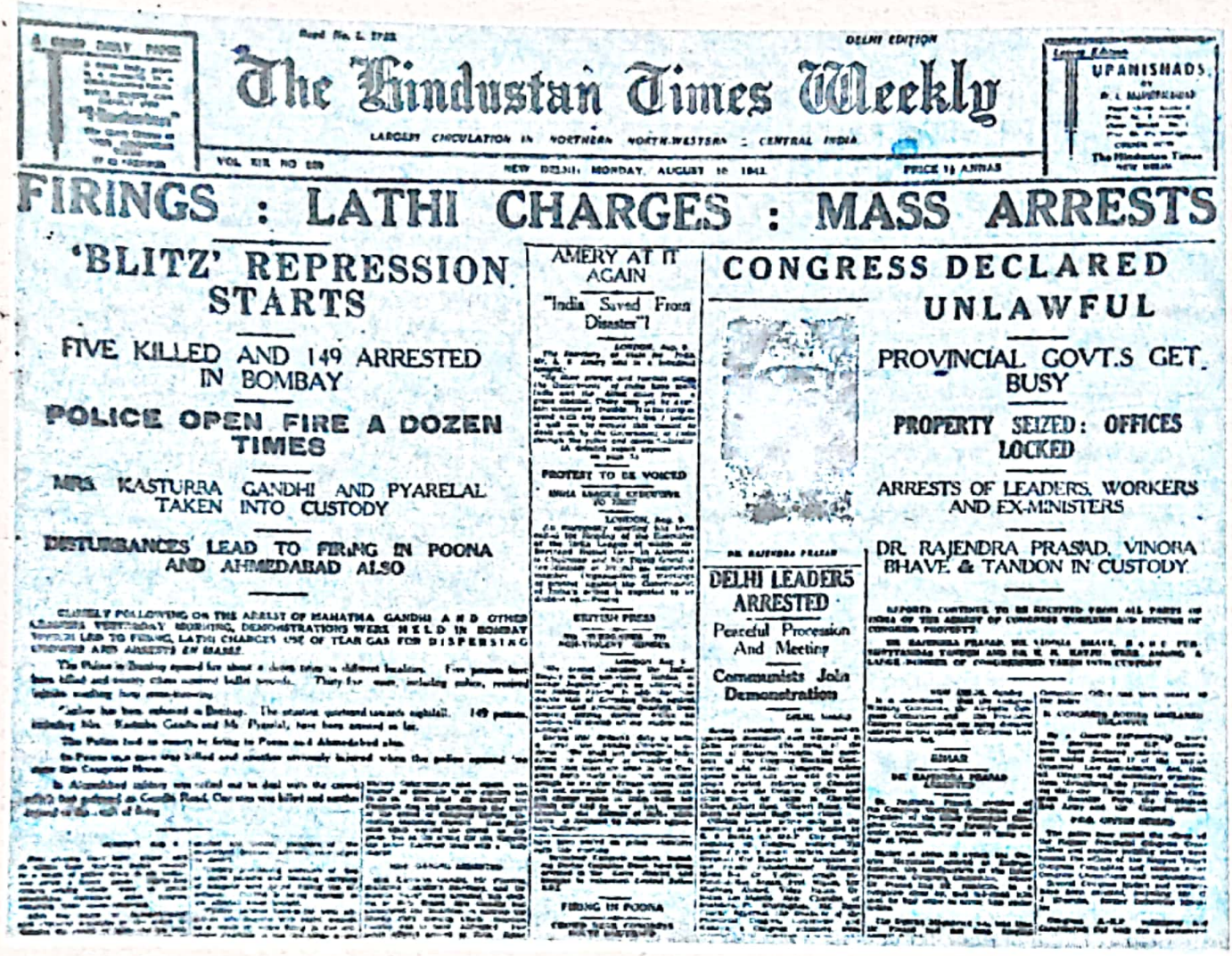

DELHI EDITION

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN NORTH-WESTERN & CENTRAL INDIA

UPANISHADS

NEW DELHI: MONDAY, AUGUST 10 1942

FIRINGS : LATHI CHARGES : MASS ARRESTS

'BLITZ' REPRESSION STARTS

FIVE KILLED AND 149 ARRESTED IN BOMBAY

POLICE OPEN FIRE A DOZEN TIMES

MRS. KASTURBA GANDHI AND PYARELAL TAKEN INTO CUSTODY

DISTURBANCES LEAD TO FIRING IN POONA AND AHMEDABAD ALSO

AMERY AT IT AGAIN

"India Saved From Disaster"!

PROTEST TO BE VOICED

BRITISH PRESS

FIRING IN POONA

CONGRESS DECLARED UNLAWFUL

PROVINCIAL GOVT.S GET BUSY

PROPERTY SEIZED: OFFICES LOCKED

ARRESTS OF LEADERS, WORKERS AND EX-MINISTERS

DR. RAJENDRA PRASAD, VINOBA BHAVE & TANDON IN CUSTODY

DR. RAJENDRA PRASAD

DELHI LEADERS ARRESTED

Peaceful Procession And Meeting

Communists Join Demonstration

'भारत छोड़ो' के प्रस्ताव पास होने के दूसरे दिन 9 अगस्त 1942 के समाचार पत्रों में प्रकाशित दमन संबंधी खबरें

को फिर एक बार गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।

इन गिरफ्तारियों की खबर ने पूरे देश को सकते में डाल दिया और हर जगह विरोध में एक स्वतःस्फूर्त आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें जनता का अभी तक दबा हुआ गुस्सा झलक रहा था। नेताविहीन और संगठन विहीन जनता ने जिस ढंग से भी ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में कारखानों में, स्कूलों और कालेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई, और प्रदर्शन हुए जिन पर लाठी चार्ज और फायरिंग भी हुए। बार-बार की गोलीबारी और दमन से क्रुद्ध होकर जनता ने अनेक जगहों पर हिंसक कार्यवाहियां भी कीं। उसने पुलिस थानों, डाकखानों, रेलवे स्टेशनों आदि ब्रिटिश शासन के तमाम प्रतीकों पर हमले किए। उन्होंने टेलीफोन के तार उखाड़ दिए, तार के खंभे गिरा दिए, रेल लाइनें उखाड़ दीं और सरकारी इमारतों में आग लगा दी। इस संबंध में मद्रास और बंगाल सबसे अधिक प्रभावित हुए। अनेक जगहों पर अनेक शहरों, कस्बों और गांवों में विद्रोहियों का अस्थायी कब्जा भी हुआ। संयुक्त प्रांत, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु और महाराष्ट्र के अनेक भागों में ब्रिटिश शासन लुप्त हो गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया जिले, बंगाल के मिदनापुर जिले में तामलुक, और बंबई के सतारा जिले जैसे कुछ क्षेत्रों में क्रांतिकारियों ने 'समानांतर सरकार' भी बना ली। आम तौर पर छात्र, मजदूर और किसान ही इस 'विद्रोह' के आधार थे जबकि उच्च वर्गों के लोग तथा नौकरशाही सरकार के वफादार रहे।

(4) समानांतर सरकार
(5) छात्र, मजदूर व किसान इस विद्रोह के आधार थे।

Scanned with CamScanner

(1) बंगाल में अकाल ——— 1943
(2) जून 1941 ——— सुभाष चंद्र बोस
(1) सोवियत संघ (2) जर्मनी (3) जापान — 1943

प्रदर्शनकारियों पर बंबई में 9अगस्त 1942को आँसू गैस छोड़ती हुई पुलिस

सरकार ने अपनी ओर से 1942 के आंदोलन को कुचलने के लिए सब कुछ किया । उसके दमन की कोई सीमा नहीं रही । प्रेस का पूरी तरह गला घोंट दिया गया । प्रदर्शन कर रही भीड़ों पर मशीनगनों से गोलियां तथा हवा में बम भी बरसाए गए । कैदियों को यातनाएं दी गई । पुलिस और खुफिया पुलिस का राज चारों ओर था । अनेक नगरों और कस्बों को सेना ने अपने नियंत्रण में ले लिया । पुलिस और सेना की गोलीबारी में 10,000 से अधिक लोग मारे गए । विद्रोही गांवों को जुर्माना के रुप में भारी–भारी रकमें देनी पड़ीं और गांव वालों पर सामूहिक रुप से कोड़े बरसाए गए । 1857 के विद्रोह के बाद भारत में इतना निर्मम दमन कभी देखने को नहीं मिला था ।

सरकार अंततः आंदोलन को कुचलने में सफल रही । 1942का यह विद्रोह वास्तव में बहुत संक्षिप्त रहा । इसका महत्व इस बात में था कि इसने दिखाया कि देश में राष्ट्रवादी भावनाएं किस गहराई तक अपनी जड़ें जमा चुकी थीं और जनता संघर्ष और बलिदान की कितनी बड़ी क्षमता प्राप्त कर चुकी थी । यह स्पष्ट था कि जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत पर शासन कर सकना अब अंग्रेजों को संभव नहीं लगता ।

1942 के विद्रोह के दमन के बाद, 1945 में युद्ध की समाप्ति तक देश में राजनीतिक गतिविधियां लगभग ठप रहीं । राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वमान्य नेता जेलों में बंद थे और कोई नया नेता उनकी जगह नहीं ले सका था और न ही देश को नेतृत्व दे सका था 1943 में बंगाल में आधुनिक इतिहास का सबसे बड़ा अकाल फूट पड़ा । कुछ ही महीनों में तीस लाख से अधिक लोग भूख से मर गए । इससे जनता एक भयानक गुस्से से भर उठी क्योंकि सरकार अगर चाहती तो इतने लोगों को अकाल में मरने से बचा सकती थी । फिर भी इस गुस्से को पर्याप्त राजनीतिक अभिव्यक्ति न मिल सकी ।

लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन को देश के बाहर एक नई अभिव्यक्ति मिली । सुभाषचंद्र बोस मार्च 1941 में देश से बाहर निकल गए थे और सहायता के लिए सोवियत संघ जाना चाहते थे। लेकिन जून 1941 में सोवियत संघ भी जब मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध

Scanned with CamScanner

(1) सिंगापुर में ——— आजाद हिंद फौज की स्थापना
(2) उनकी सहायता ——— रासबिहारी बोस, जनरल मोहन सिंह
(3) जय हिंद, नेताजी ——— सुभाष चंद्र बोस
(4) बर्मा से भारत पर आक्रमण करने में आजाद हिंद फौज ने जापानी सेना का साथ दिया।

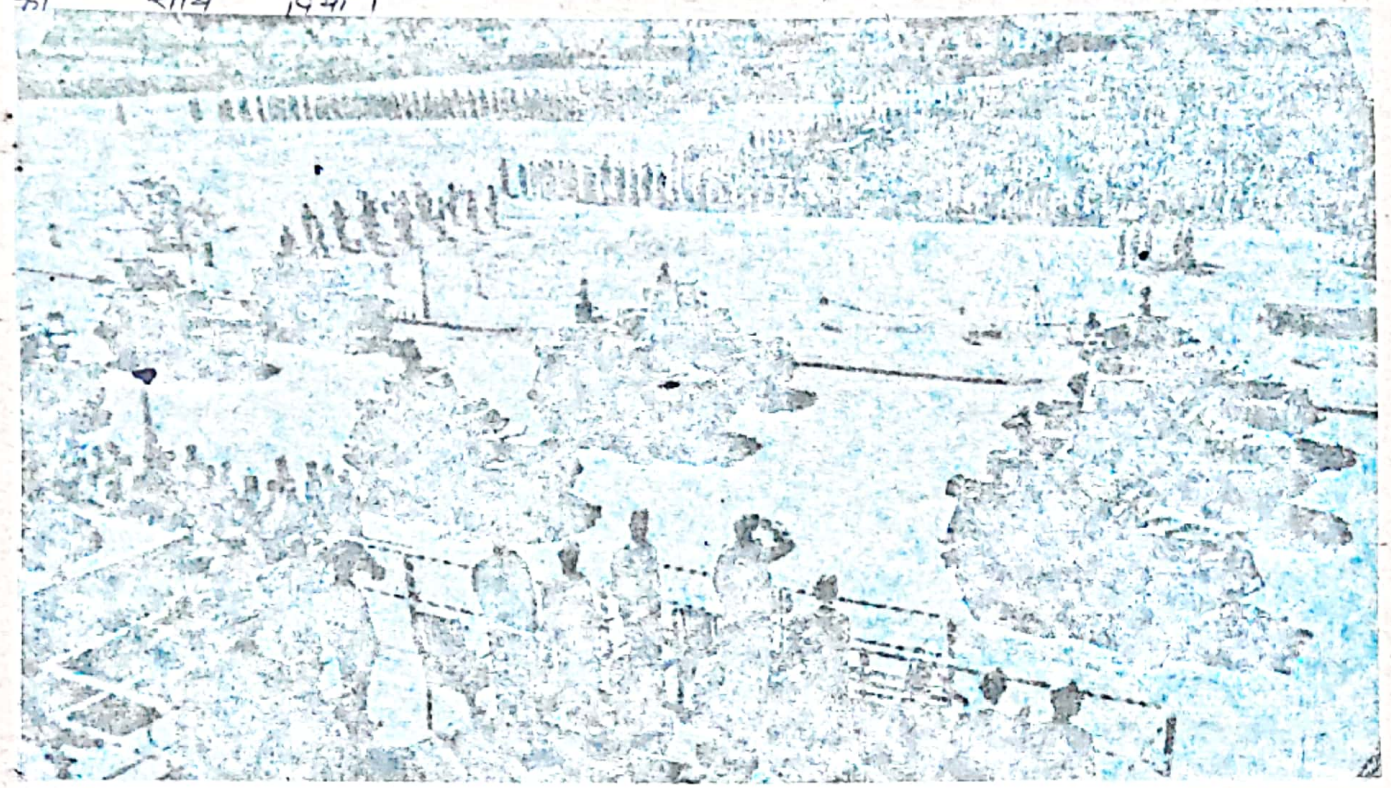

आज़ाद हिंद फौज की सशस्त्र टुकड़ी की सलामी लेते हुए सुभाष चंद बोस

में उतरा तो वे जर्मनी चले गए। वहां से वे फरवरी 1943 में जापान के लिए चल पड़े ताकि जापानी सहायता से वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष चला सकें। भारत की स्वाधीनता के लिए सैनिक अभियान चलाने के उद्देश्य से उन्होंने सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की स्थापना की। इसमें उनकी सहायता एक पुराने आतंकवादी क्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने की। सुभाष चंद्र बोस के वहां पहुंचने से पहले एक सेना बनाने के लिए कुछ काम जनरल मोहनसिंह कर चुके थे जो ब्रिटिश भारत की सेना में कप्तान थे। दक्षिण-पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीय तथा मलाया, सिंगापुर और बर्मा में जापानी सेनाओं द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय सैनिक और अधिकारी बड़ी संख्या में आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए। सुभाष चंद्र बोस ने, जिन्हें अब आजाद हिंद फौज के सिपाही "नेताजी" कहते थे, अपने अनुयायियों को "जय हिंद" का मूलमंत्र दिया। बर्मा से भारत पर आक्रमण करने में अजाद हिंद फौज ने जापानी सेना का साथ दिया। अपनी मातृ भूमि को स्वाधीन कराने के विचार से प्रेरित होकर आजाद हिंद फौज के सैनिक अधिकारी यह आशा करने लगे थे कि वे स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का प्रमुख सुभाष चंद्र बोस को बनाकर उनके साथ भारत में उसके मुक्तिदाताओं के रूप में प्रवेश करेंगे।

1944-45 में युद्ध में जापान की पराजय के बाद आजाद हिंद फौज की भी हार हुई, और सुभाष चंद्र बोस टोकियों जाते हुए रास्ते में एक वायुयान दुर्घटना में मारे गए। उस समय भारत के अधिकांश राष्ट्रवादी नेताओं ने उनकी इस रणनीति की आलोचना की कि फासीवादी ताकतों के साथ सहयोग करके स्वाधीनता जीती जाए, फिर भी आजाद हिंद फौज की स्थापना करके उन्होंने देशभक्ति का एक प्रेरणाप्रद उदाहरण भारतीय जनता और भारतीय सेना के सामने रखा। पूरे देश ने उन्हें "नेताजी" का सम्मानित नाम दिया।

युद्धोत्तर काल का संघर्ष

अप्रैल 1945 में यूरोप में युद्ध समाप्त हुआ। इसी के साथ भारत के स्वाधीनता संघर्ष ने एक नए चरण में प्रवेश किया। 1942 के विद्रोह तथा आजाद हिंद फौज की मिसाल ने भारतीय जनता की बहादुरी और दृढ़ता को स्पष्ट कर दिया था। जेलों से राष्ट्रीय नेता जब रिहा हुए तो जनता स्वाधीनता

(1) 1944-45 में जापान की हार से आजाद हिंद फौज की भी हार हुई।

Scanned with CamScanner

और उसे आपसी समझौतों के द्वारा अपनी कुछ शक्तियां सौंप सकते थे । लेकिन दोनों एक ऐसी अंतरिम सरकार की योजना पर सहमत न हो सके जो एक स्वतंत्र और संघीय भारत के लिए एक संविधान बनाने के उद्देश्य से एक संविधान सभा का गठन करती । कैबिनेट मिशन की जिस योजना पर दोनों पहले सहमत हो चुके थे उसके बारे में भी दोनों ने अलग–अलग व्याख्याएं सामने रखीं । अंततः सितंबर 1946 में कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में एक अंतरिम मंत्रिमंडल का गठन किया । कुछ हिचक के बाद अक्तूबर में मुस्लिम लीग भी इस मंत्रिमंडल में शामिल हो गई मगर उसने संविधान सभा का बहिष्कार करने का फैसला किया । 20 फरवरी 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि ब्रिटेन जून 1948 तक भारत का शासन छोड़ देगा ।

लेकिन मिलने वाली स्वाधीनता की खुशियों पर अगस्त 1946 के बाद भड़कने वाले व्यापक सांप्रदायिक दंगों ने पानी फेर दिया । हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने इन जघन्य हत्याओं का दोषी एक दूसरे को ठहराया और क्रूरता में एक दूसरे का मुकाबला करते रहे । न्यूनतम मानव–मूल्यों का इस तरह उल्लंघन होते और सत्य–अहिंसा को ताक पर रखा जाते देखकर महात्मा गांधी दुख से भर उठे । उन्होंने दंगे रोकने के लिए पूर्वी बंगाल और बिहार की पदयात्रा की । सांप्रदायिकता की आग को बुझाने में दूसरे अनेक हिंदू–मुसलमानों ने भी प्राणों से हाथ धोए । लेकिन इसके बीज सांप्रदायिक तत्वों ने, विदेशी सरकार की सहायता से बहुत गहरे बोए थे । गांधीजी और दूसरे राष्ट्रवादी नेता सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों और भावनाओं से जूझते रहे मगर बेकार ।

अंत में मार्च 1947 में वायसराय बनकर भारत आए लार्ड लुई माउंटबेटन ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं से लंबी–लंबी बातचीतों के बाद समझौते का एक रास्ता निकाला कि देश स्वाधीन तो होगा मगर एक नहीं रहेगा । भारत का विभाजन होगा और भारत के साथ पाकिस्तान नामक एक नया राज्य भी स्थापित होगा । बड़े पैमाने पर खून–खराबा और सांप्रदायिक दंगों का अंदेशा सामने था, इसलिए राष्ट्रवादी नेताओं ने मजबूर होकर भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया । लेकिन उन्होंने दो राष्ट्रों का सिद्धांत नहीं माना । उन्होंने यह नहीं माना कि देश का एक–तिहाई भाग दे दिया जाए जिसकी मांग भारत की जनसंख्या में मुसलमानों के भाग के आधार पर मुस्लिम लीग कर रही थी । वे केवल वही क्षेत्र देने पर राजी हुए जहां मुस्लिम लीग का व्यापक प्रभाव था । इस तरह पंजाब, बंगाल और असम का भी विभाजन आवश्यक हो गया । मुस्लिम लीग को एक "घुन–लगा" पाकिस्तान ही मिला । पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत तथा असम के सिलहट जिले में लीग का प्रभाव संदिग्ध था, इसलिए वहां जनमत–संग्रह कराने का निश्चय हुआ । दूसरे शब्दों में, देश का विभाजन तो हुआ, मगर हिंदू धर्म और इस्लाम के आधार पर नहीं ।

सविधान सभा के समक्ष 14 अगस्त 1947 को दी ट्रिस्ट विद डेस्टिनी नामक प्रसिद्ध भाषण देते हुए जवाहर लाल नेहरु

Scanned with CamScanner

(1) जूनागढ़
(2) हैदराबाद
(3) जम्मू-कश्मीर

भारतीय राष्ट्रवादियों ने विभाजन को स्वीकार तो किया मगर इसलिए नहीं कि यहां दो (हिंदू और मुस्लिम) राष्ट्र रहते थे, बल्कि इसलिए कि पिछले लगभग 70 वर्षों के दौरान हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकता का विकास इस प्रकार हुआ था कि विभाजन न होता तो वहशियाना और बर्बर सांप्रदायिक दंगों में लाखों लोगों का संहार होता। अगर ये दंगे देश के किसी एक वर्ग तक सीमित होते तो कांग्रेस के नेता उन्हें दबाने और विभाजन के खिलाफ कड़ा रुख अपनाने के प्रयास करते। लेकिन दुर्भाग्य से यह आपसी मार-काट हर जगह हो रही थी और इसमें हिंदू-मुसलमान, दोनों की सक्रिय भागीदारी थी। सबसे बड़ी बात यह है कि देश पर अभी भी विदेशियों का शासन था जिन्होंने दंगों को रोकने के लिए उंगली तक नहीं उठाई। उल्टे, अपनी फूट डालने वाली नीतियों से विदेशी सरकार ने इन दंगों को प्रोत्साहन ही दिया, शायद इस आशा में कि वह दोनों नवस्वतंत्र राष्ट्रों को आपस में लड़ा सकेगी।* यहां तक कि अंत में जिन्ना को भी मजबूर होकर अपने दो राष्ट्रों के सिद्धांत में फेर बदल करना पड़ा जोकि सांप्रदायिकता की जड़ था। भारत में रहने का फैसला करने वाले मुसलमानों ने जब उनसे पूछा कि वे क्या करें, तो जिन्ना ने कहा कि उन्हें भारत का वफादार नागरिक बनना चाहिए। 11 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा के आगे उन्होंने कहा था : "आपका धर्म या जाति या पंथ कोई भी हो सकता है, इसका राज्य के कारोबार से कुछ भी लेना-देना नहीं है।" वास्तव में अपनी सांप्रदायिक राजनीति के लिए जिस जिन्न को उन्होंने बोतल से बाहर निकाल दिया था, अब वे उसको फिर से बोतल में बंद करने की बेकार कोशिश कर रहे थे।

भारत और पाकिस्तान के स्वाधीन होने की घोषणा 3 जून 1947 को की गई। रजवाड़ों को यह छूट दी गई कि इनमें से किसी भी-राज्य में वे शामिल हो जाएं। रजवाड़ों की जनता के व्यापक आंदोलनों के दबाव में और गृहमंत्री सरदार पटेल की सफल कूटनीति के कारण अधिकांश रजवाड़ों ने भारत में शामिल होने का फैसला किया। जूनागढ़ के नवाब, हैदराबाद के निजाम, तथा जम्मू-कश्मीर के महाराजा कुछ समय तक अगर-मगर करते रहे। काठियावाड़ के समुद्र तट पर स्थित छोटे से रजवाड़े जूनागढ़ की जनता ने भारत में शामिल होने की घोषणा की मगर वहां के नवाब ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया। अंततः भारतीय सेना ने राज्य पर कब्जा कर लिया और वहां एक जनमत-संग्रह कराया गया जिसका परिणाम भारत में शामिल होने के पक्ष में निकला। हैदराबाद के निजाम ने स्वतंत्र राज्य घोषित करने की कोशिश की, मगर वहां तेलंगाना क्षेत्र में हुए एक आंतरिक विद्रोह तथा वहां भारतीय सेनाओं के पहुंचने के बाद उसे भी 1948 में भारत में शामिल होना पड़ा। कश्मीर के महाराजा ने भी भारत या पाकिस्तान में शामिल होने में देर की, मगर वहां की जनता, जिसका नेतृत्व नेशनल कांफ्रेंस कर रही थी, भारत में शामिल होना चाहती थी। मगर कश्मीर पर पाकिस्तान के पठानों तथा अनियमित फौजी दस्तों के हमले के बाद उसे भी अक्तूबर 1947 में भारत में शामिल होना पड़ा।

15 अगस्त 1947 को भारत ने उल्लास के साथ अपना पहला स्वाधीनता-दिवस मनाया। देशभक्तों की कई पीढ़ियों के बलिदानों तथा अनगिनत शहीदों के खून का फल आखिर हमें मिला। उनका सपना अब सच्चाई बन चुका था। 14 अगस्त की रात में संविधान सभा के आगे दिए गए अपने एक स्मरणीय वक्तव्य में जवाहरलाल नेहरु ने जनता की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहा :

> वर्षों पहले हमने भविष्य के साथ वादा किया था और अब समय आ गया है कि पूरी तरह न सही तो भी बहुत काफी सीमा तक हम अपने वचन का पालन करें। रात को बारह का घंटा जब बजेगा और जब पूरा विश्व सो रहा होगा, तब भारत जीवन और स्वाधीनता की ओर अग्रसर होगा। इतिहास में कभी-कभी ही वह क्षण आता है, मगर आता अवश्य है जब हम पुराने से निकलकर नए को अपनाते हैं जब एक युग का अंत होता है और जब किसी राष्ट्र की लंबे समय से दबी हुई आत्मा मुखर हो उठती है। उचित यही है कि हम इस पुनीत क्षण में भारत और

* सांप्रदायिकता के बारे में 1946 में जवाहरलाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'भारत : एक खोज' में लिखा था : "निश्चित ही यह हमारा दोष है और हमें अपनी कमजोरियों का दंड भुगतना होगा। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत में तोड़-फोड़ पैदा करने के लिए सोच-समझकर जो कुछ किया उसके लिए मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता। दूसरे सभी घाव भर जाएंगे, मगर यह एक घाव कहीं बहुत लंबे समय तक रिसता रहेगा।"

Scanned with CamScanner

के एक और, और सम्भवतः अंतिम संघर्ष की आशा करने लगी ।

यह नया संघर्ष आजाद हिंद फौज के सैनिकों और अधिकारियों पर चलाए गए मुकद्दमें के विरोध में एक व्यापक आंदोलन के रुप में उभरा । सरकार ने आजाद हिंद फौज के जनरल शाहनवाज, जनरल गुरदयाल सिंह ढिल्लो और जनरल प्रेम सहगल पर दिल्ली के लाल किले में मुकद्दमा चलाने का फैसला किया । ये लोग पहले ब्रिटिश भारतीय सेना के अधिकारी थे । उन पर ब्रिटिश सिंहासन के प्रति निष्ठा की शपथ भंग करने और इस प्रकार 'गद्दार' होने का आरोप लगाया गया । दूसरी ओर जनता ने उनका स्वागत राष्ट्रीय नायकों के रुप में किया । पूरे देश में उनकी रिहाई की मांग को लेकर विशाल जन-प्रदर्शन हुए। पूरा देश उत्तेजना से और इस आशा से भरा था कि अब की बार का संघर्ष विजयी होगा । इसलिए वे इन नायकों को सजा दिए जाने की छूट नहीं दे सकती थी । ब्रिटिश सरकार भी इस समय भारतीय जनमत को अनदेखा करने की स्थिति में नहीं थी । हालांकि कोर्ट मार्शल में आजाद हिंद फौज के इन बंदियों को दोषी पाया गया, मगर सरकार ने उन्हें छोड़ देने में ही भलाई समझी । ब्रिटिश सरकार के इस बदले रवैए के अनेक कारण थे ।

प्रथम, युद्ध के कारण विश्व में शक्तियों का संतुलन बदल गया था । युद्ध के बाद अब ब्रिटेन की जगह अमरीका और सोवियत संघ बड़ी शक्तियों के रुप में उभरे । ये दोनों भारत की स्वतंत्रता की मांग के समर्थक थे ।

द्वितीय, ब्रिटेन युद्ध में जीतने वाले पक्ष में था अवश्य मगर अब उसकी आर्थिक और सैनिक शक्ति बिखर चुकी थी । ब्रिटेन को अब अपने को संभालने में ही वर्षों लग जाते । इसके अलावा, ब्रिटेन में सरकार भी बदल चुकी थी । कंजर्वेटिव पार्टी की जगह अब लेबर पार्टी की सरकार थी और उसके अनेक सदस्य कांग्रेस की मांगों के समर्थक थे। ब्रिटिश सैनिक युद्ध में थक–हार चुके थे । लगभग छः वर्षों तक लड़ने और खून बहाने के बाद अब वे और कई साल घर से दूर भारत में रहकर वहां की जनता के स्वाधीनता–संघर्ष को कुचलने के लिए तैयार नहीं थे ।

तृतीय, ब्रिटिश भारतीय सरकार को राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए यहां के नागरिक प्रशासन के भारतीय सदस्यों और सशस्त्र सेनाओं पर भरोसा नहीं रह गया था । आजाद हिंद फौज की घटना ने दिखा दिया था कि देशभक्ति की भावना भारतीय सेना में भी फैल चुकी थी जो भारत में ब्रिटिश शासन का प्रमुख आधार थी । आग में तेल छिड़कने का काम फरवरी 1946 में बंबई में भारतीय नौसेना के जहाजियों के विद्रोह ने किया। ये जहाजी सेना और नौसेना से सात घंटों तक लड़ते रहे और उन्होंने समर्पण तभी किया जब राष्ट्रीय नेताओं ने उनसे ऐसा करने के लिए कहा । दूसरी कई जगहों पर भी जहाजियों ने उनकी सहानुभूति में हड़ताल की। इसके अलावा भारतीय वायु सेना में भी व्यापक हड़तालें हुईं । ब्रिटिश शासन के दो और प्रमुख आधारों अर्थात पुलिस और नौकरशाही में भी राष्ट्रवादी झुकाव के चिह्न दिखाई देने लगे थे । अब राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए उनका भरोसे के साथ उपयोग नहीं किया जा सकता था । उदाहरण के लिए, बिहार और दिल्ली के पुलिस बलों ने हड़तालें कीं ।

चौथी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारतीय जनता अब आत्मविश्वास से भरपूर और टकराने के लिए तैयार नजर आ रही थी । वह अब विदेशी शासन के अपमान को और झेलने को तैयार न थी । अब आजादी मिलने तक आराम उसके लिए हराम था । नौसेना का विद्रोह तथा आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई के लिए हड़ताल हो चुकी थी । इसके अलावा 1945–46 में अनेकों आंदोलन, हड़तालें, कामबंदियां और प्रदर्शन पूरे देश में और हैदराबाद, ट्रावनकोर और कश्मीर जैसे अनेक रजवाड़ों तक में भी हुए । उदाहरण के लिए नवंबर 1945 में आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई की मांग को लेकर कलकत्ता में लाखों लोगों ने प्रदर्शन किया । तीन दिन तक नगर में सरकार नाम की कोई चीज रही ही नहीं थी । फिर 12 फरवरी 1946 को भी आजाद हिंद फौज के एक और बंदी, अब्दुर्रशीद की रिहाई की मांग को लेकर नगर में एक और जन–प्रदर्शन हुआ । 22 फरवरी को बंबई में एक पूर्ण हड़ताल हुई तथा कारखानों और दफ्तरों में काम ठप्प रहा । यह सब विद्रोही जहाजियों के समर्थन में था । इस जन–उभार को दबाने के लिए सेना बुलानी पड़ी । 48 घंटों के अंदर सड़कों पर 250 से अधिक लोग गोली के शिकार हुए ।

पूरे देश में बड़े पैमाने पर मजदूर–असंतोष भी फैल रहा था । शायद ही कोई उद्योग रहा हो

Scanned with CamScanner

(1) तेभागा संघर्ष
(2) कैबिनेट मिशन ——— मार्च 1946
(3) 30 जनवरी 1948 को गाँधीजी की हत्या

जिसमें हडताल न हुई हो । जुलाई 1946 में डाक–तार मजदूरों ने देशव्यापी हड़ताल की । अगस्त 1946 में दक्षिण भारत में रेल मजदूरों की हड़ताल हुई । 1945 के बाद, जैसे–जैसे स्वाधीनता का समय पास आया, किसान आंदोलनों में एक नया उबाल आया । युद्ध के बाद किसानों का सबसे जुझारु संघर्ष बंगाल के बंटाईदारों का तेभागा संघर्ष था जिसमें घोषणा की गई कि वे अब जमींदारों को फसल का आधा नहीं, बल्कि एक–तिहाई भाग ही देंगे । जमीन के लिए तथा ऊंचे लगानों के खिलाफ हैदराबाद, मलाबार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र में भी संघर्ष हुए। कामबंदी, हड़तालों और प्रदर्शनों का आयोजन करने में स्कूलों और कालेजों के छात्रों ने प्रमुख भूमिका निभाई । हैदराबाद, ट्रावनकोर, कश्मीर और पटियाला आदि रजवाड़ों में भी जन–उभार और संघर्ष फैल उठे । 1946 के आरंभ में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव एक और प्रमुख राजनीतिक घटनाक्रम सिद्ध हुए । सामान्य सीटों में से अधिकांश सीटें कांग्रेस ने जीतीं जबकि मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों में से अधिकांश मुस्लिम लीग को मिलीं ।

इसलिए ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1946 में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा कि भारतीय नेताओं से भारतीयों को सत्ता सौंपने की शर्तों के बारे में बातचीत की जाए । कैबिनेट मिशन ने दो स्तरों वाली एक संघीय योजना का प्रस्ताव किया जिससे आशा की गई कि बड़ी मात्रा में क्षेत्रीय स्वायत्तता देकर भी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखा जा सकेगा। इस योजना में प्रांतों और रजवाड़ों का एक संघ होता और संघीय केंद्र का केवल प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचार विषयों पर नियंत्रण होता । साथ ही प्रांत अपने–अपने क्षेत्रीय संगठन भी बना सकते थे

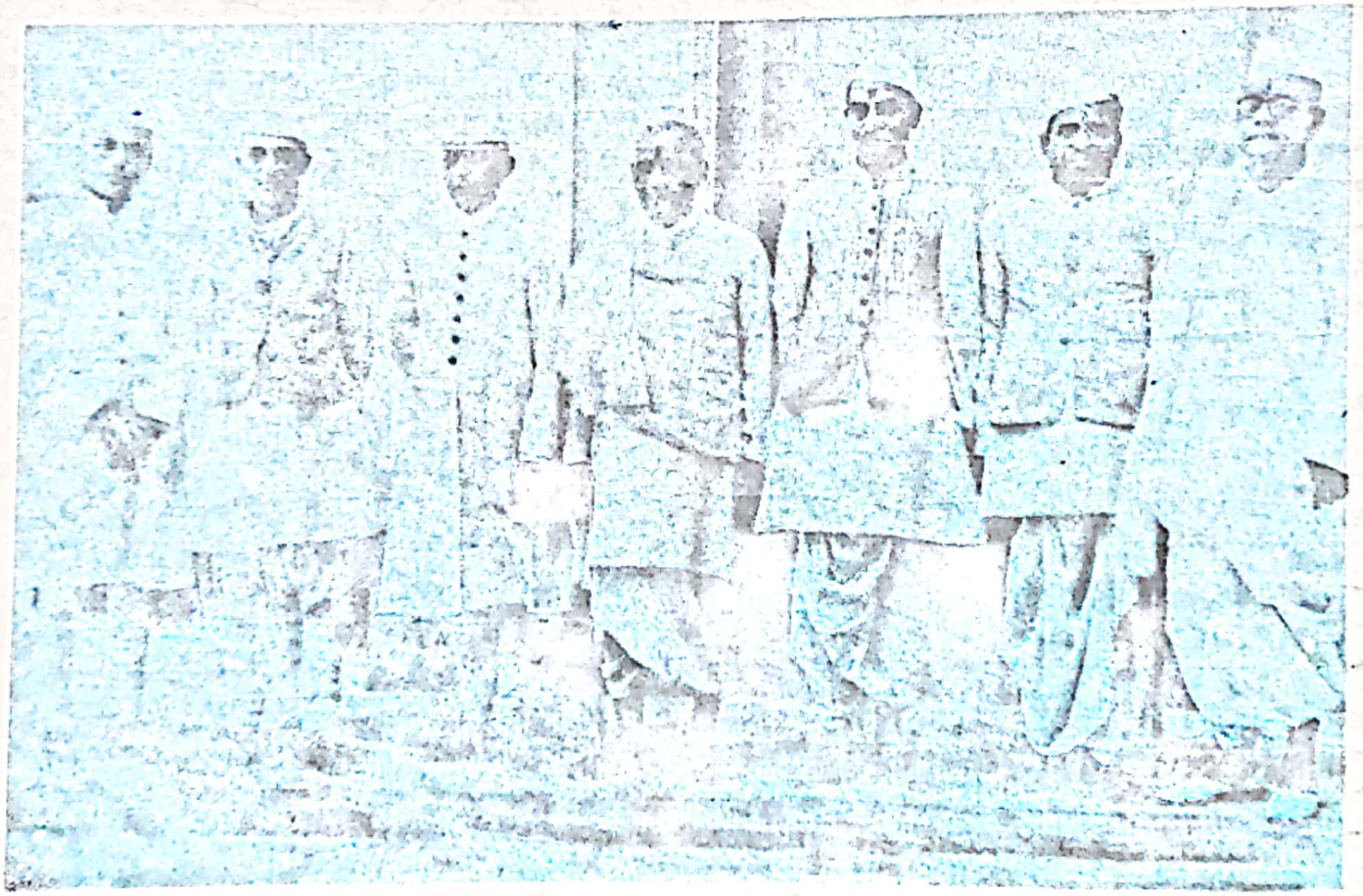

अंतरिम सरकार के सदस्य (दाएं से बाएं) शरतचंद्र बोस, जगजीवन राम, राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल, आसफ अली, जवाहर लाल नेहरु सैय्यद अली जहीर

Scanned with CamScanner

उसकी जनता की सेवा के प्रति और उससे भी व्यापकतर मानवता के हित में समर्पित होने का संकल्प करें । . . . . आज हमारे दुर्भाग्य का काल समाप्त होता है और भारत ने पुनः अपने–आपको पा लिया है । आज हम जिस उपलब्धि की खुशी मना रहे हैं वह निरंतर प्रयत्न चाहती है ताकि हम वे संकल्प पूरे कर सकें जो हम प्रायः करते आए हैं ।

परंतु यह उल्लास जिसे असीम और अबाध होना चाहिए था, दुख और उदासी से भरा हुआ था । भारत की एकता का सपना चकनाचूर हो चुका था और भाई, भाई से बिछड़ चुका था । इससे भी बुरी बात यह थी कि स्वतंत्रता के इस क्षण में भी अवर्णनीय बर्बरता के साथ सांप्रदायिकता का दानव भारत और पाकिस्तान, दोनों में लाखों लोगों की बलि ले रहा था । अपने पूर्वजों की धरती से नाता तोड़कर लाखों–लाख शरणार्थी इन दो नए राज्यों में पहुंच रहे थे । * राष्ट्र की विजय के इस क्षण में घटित इस त्रासदी के प्रतीक वही गांधीजी थे जिन्होंने भारतीय जनता को अहिंसा–सत्य–प्रेम–साहस–शूरवीरता का संदेश दिया था, जो भारतीय संस्कृति के उत्कृष्टतम तत्वों के प्रतीक थे । राष्ट्रीय हर्ष के इन दिनों में भी वे घृणा से चूर बंगाल के गांवों में चक्कर लगा रहे थे और उन लोगों को राहत पहुंचाने की कोशिश कर रहे थे जो उस समय भी वहशियाना सांप्रदायिक हत्याकांडों के द्वारा स्वतंत्रता की कीमत चुकाने का काम कर रहे थे । और इन खुशियों की गूंज अभी थमी भी न थी कि 30 जनवरी 1948 को एक हत्यारे, घृणा से चूर एक हिंदू–कट्टरपंथी ने उस चिराग को बुझा दिया जो 70 वर्षों से हमारे इस देश में उजाला फैलाता आ रहा था । इस तरह गांधीजी "एकता के जिस उद्देश्य के प्रति हमेशा समर्पित रहे उसी के लिए शहीद हो गए ।"*

एक अर्थ में स्वाधीनता की प्राप्ति के रुप में देश ने अभी सिर्फ पहला कदम उठाया था, अर्थात विदेशी शासन को उखाड़ फेंककर उसने राष्ट्रीय पुनर्जन्म की प्रमुख बाधा को दूर किया था । सदियों के पिछड़ापन, पूर्वाग्रह, असमानता और अज्ञान अभी भी देश पर हावी थे और पुनर्रचना का लंबा काम अभी शुरु ही हुआ था । जैसा कि 1941 में अपने निधन से तीन माह पहले रवीद्रनाथ ठाकुर ने कहा था :

"भाग्य का चक्र किसी न किसी दिन अंग्रेज जाति को बाध्य करेगा कि वह अपने भारतीय साम्राज्य से हाथ धो ले । लेकिन वे अपने पीछे किस तरह का भारत, कितनी बुरी बदहाली छोड़ जाएंगे ? जब उनके सदियों पुराने प्रशासन का सोता अंततः सूखेगा तब कितना कूड़ा–करकट और कीचड़ वे अपने पीछे छोड़ जाएंगे ।"

लेकिन स्वाधीनता के संघर्ष ने औपनिवेशिक शासन को ही नहीं उखाड़ फेंका था, इसकी एक तस्वीर भी

पायोनियर नामक अखबार में गांधीजी की हत्या के बाद प्रकाशित दि मार्टर (शहीद)

*इस काल के बारे में नेहरू ने बाद में लिखाः "भय और घृणा ने हमारे मन को जकड़ लिया था, और सभ्यता के सारे बंधन टूट चुके थे । एक दरिंदगी के बाद दूसरी दरिंदगी देखने में आई, और मानव शरीरधारी प्राणियों की निर्मम पशुता को देखकर हृदय एकाएक शून्य से भर उठा । चिराग एक–एक करके बुझते नजर आए हां, सभी नहीं, क्योंकि दो–एक अभी भी उमड़ते तूफान में टिमटिमा रहे थे । हम मरने वालों और मर रहे लोगों के प्रति और मौत से भी अधिक भयानक पीड़ा उठा रहे लोगों के प्रति दुखी थे । इससे भी अधिक दुखी थे हम भारत, अपनी साझी माता के प्रति, जिसकी मुक्ति के लिए हम इतने वर्षों से प्रयास करते आ रहे थे ।"

* इससे पहले 1947 में अपने जन्मदिन पर एक पत्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था कि वे अब और जीना नहीं चाहते और वे "ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह मुझे आंसुओं की इस घाटी से उठा ले, और मुझे उस हत्याकांड का असहाय दर्शक न बना रहने दे जो बर्बर बन चुका मनुष्य कर रहा है, भले ही वह अपने–आपको मुसलमान या हिंदू या कुछ और ही क्यों न कहता हो ।"

Scanned with CamScanner

डॉ. बी. आर. अंबेडकर

सामने रखी थी । यह तस्वीर एक लोकतांत्रिक नागरिक स्वतंत्रताओं से भरपूर और धर्मनिरपेक्ष भारत की थी। यह तस्वीर एक स्वाधीन आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक समानता और राजनीतिक रुप से जागरुक और सक्रिय जनता पर आधारित भारत की थी । यह तस्वीर थी एक ऐसे भारत की जो अपने पड़ोसियों और शेष विश्व के साथ शांतिपूर्वक रहता हो और जिसका आधार एक स्वतंत्र विदेश नीति हो ।

इस तस्वीर को मूर्त रुप देने का पहला प्रयास जवाहरलाल नेहरु और भीमराव अंबेडकर के मार्गदर्शन में संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत का नया संविधान बनाकर किया । 26 जनवरी 1950 को लागू होने वाले इस संविधान ने कुछ बुनियादी सिद्धांत और मूल्य सामने रखे । इसके अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक गणराज्य होगा जिसमें बालिग मताधिकार (सभी बालिग स्त्री–पुरुषों के लिए मत देने का अधिकार) पर आधारित एक संसदीय प्रणाली होगी । यह एक संघीय व्यवस्था होगी जिसमें संघ सरकार और संघ बनाने वाले राज्यों के अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रुप से अलग–अलग होंगे । संविधान ने सभी भारतीय नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार दिए, जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक सभा करने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता, संपत्ति जुटाने और उसका उपयोग करने की स्वतंत्रता आदि । संविधान ने सभी नागरिकों को कानून के सामने बराबरी तथा सरकारी रोजगार के अवसर की समानता की जमानत दी । यह निश्चित हुआ कि राज्य धर्म, जाति, लिंग या जन्म–स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं करेगा । 'अस्पृश्यता' का उन्मूलन कर दिया गया तथा किसी भी रुप में इसके व्यवहार पर प्रतिबंध लगा दिया गया । सभी भारतीयों को स्वतंत्रतापूर्वक किसी भी धर्म को मानने, उसके अनुसार कार्य करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार दिया गया । साथ ही पूरी तरह राज्य के खर्च पर चलने वाले किसी भी शैक्षिक संस्थान में किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने पर रोक लगा दी गई। संविधान में कुछ "राज्या के नीति–निर्देशक सिद्धांत" भी निश्चित किए गए जिन्हें किसी अदालत द्वारा तो लागू नहीं कराया जा सकता मगर जो कानून बनाने में राज्य का मार्गदर्शन करेंगे । इसमें ये सिद्धांत शामिल हैं––राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को प्रोत्साहन; धन और उत्पादन के साधनों का कुछ हाथों में केंद्रीकरण रोकना; स्त्री–पुरुष, दोनों के लिए समान काम का समान वेतन; ग्राम पंचायतों की स्थापना; काम और शिक्षा का अधिकार; बेरोजगारी, बुढ़ापे और बीमारी में सार्वजनिक सहायता; पूरे देश में एकसमान पारिवारिक कानून; तथा जनता के कमजोर वर्गों, खासकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, के शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहन ।

अपनी क्षमताओं पर भरोसा करके तथा मन में सफलता की आकांक्षा लेकर अब भारतीय जनता अपने देश का कायाकल्प करने तथा एक न्यायप्रिय, श्रेष्ठ समाज और एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और समतावादी भारत का निर्माण करने के काम में जुट गई ।

Scanned with CamScanner

अभ्यास

1. 1927–29 के दौरान की घटनाओं का विवेचन कीजिए जो भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की नई अवस्था के द्योतक हैं ।
2. असहयोग आंदोलन वापस लेने के बाद के क्रांतिकारी आंदोलन की दिशा का पता लगाइए । 1920 के दशक के उत्तरार्ध के बाद क्रांतिकारियों की सोच में जो परिवर्तन हुआ उसका विश्लेषण कीजिए ।
3. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन 1929 के महत्व का विवेचन कीजिए ।
4. सिविल नाफरमानी आंदोलन के आरंभ से लेकर 1934 में इसके वापस लेने तक के बीच इसकी प्रगति का वर्णन कीजिए । अब तक के सबसे बड़े जन–संघर्ष के रुप में इसके महत्व का आकलन कीजिए ।
5. ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज सम्मेलन का आयोजन क्यों किया ? इन सम्मेलनों के प्रति कांग्रेस का रवैया क्या था और इनका क्या नतीजा निकला ?
6. 1935 के भारत सरकार अधिनियम की क्या मुख्य विशेषताएं थीं । इसके किन प्रावधानों को नहीं लागू किया गया और क्यों ?
7. विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ।
8. समाजवादी विचारों और किसानों तथा मजदूरों के आंदोलनों के विकास का वर्णन कीजिए । राष्ट्रीय आंदोलन पर उनके प्रभाव का विवेचन कीजिए ।
9. दूसरे देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों, 1930 के दशक में यूरोप में घटी घटनाओं, तथा एशिया और यूरोप के देशों पर होने वाले आक्रमणों के बारे में कांग्रेस के रुख का वर्णन कीजिए ।
10. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय राज्यों की स्थिति और उसके स्वरुप का विवेचन कीजिए । भारतीय राज्यों में जनता के आंदोलन के मुख्य उद्देश्य क्या थे ? राष्ट्रवादी आंदोलन का यह अविभाज्य अंग क्यों बन गया ?
11. 1930 और 1940 के दशक में सांप्रदायिकता के विकास का विवेचन कीजिए । राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा इसको रोकने के लिए किए गए प्रयासों का आकलन कीजिए ।
12. द्वितीय विश्व युद्ध के प्रति कांग्रेस के रवैए का वर्णन कीजिए । क्रिप्स मिशन की असफलता और उसके नतीजों का विवेचन कीजिए ।
13. भारत छोड़ो आंदोलन की प्रगति का विवरण दीजिए । भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास और इसके महत्व का विवेचन कीजिए ।
14. आजाद हिंद फौज की रचना और गतिविधियों की वर्णन कीजिए ।
15. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व राजनीति में तथा भारत के प्रति ब्रिटिश रुख में हुए बदलावों का विवेचन कीजिए ।
16. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत में होने वाले विशाल जन–आंदोलन का वर्णन कीजिए ।
17. कैबिनेट मिशन से क्या आशय है ? भारतीय नेताओं के साथ इसके बातचीत के क्या नतीजे निकले ?
18. भारत विभाजन की मांग के प्रति कांग्रेस और गांधी जी के रवैए का विवेचन कीजिए । अंततोगत्वा विभाजन की बात क्यों मान ली गई ?
19. भारतीय रजवाड़ों को भारतीय संघ में मिलाए जाने की प्रक्रिया की वर्णन कीजिए ।
20. भारतीय संविधान में राष्ट्रवादी आंदोलन के आदर्शों को किस प्रकार समाविष्ट किया गया है, व्याख्या कीजिए ।
21. सामूहिक परियोजना के रुप में 1927 से 1947 के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन से संबंधित सामग्री एकत्र कीजिए । इस सामग्री में निम्नांकित बातें शामिल की जा सकती है : महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों के

Scanned with CamScanner

पाठ उदाहरण स्वरुप लाहौर कांग्रेस के संकल्प, स्वतंत्रता के लिए लिया गया शपथ, भारत छोड़ो संबंधी संकल्प, राष्ट्रवादी नेताओं के लेखन, भाषण तथा वक्तव्यों आदि के चुने हुए अंश, 3. चुनी हुई घटनाओं के विषय में समाचारपत्रों की रपटें (लाहौर षडयंत्र का मामला, दांडी यात्रा, सिविल नाफरमानी के दौरान लगाए गए प्रतिबंध और नेताओं का कैद किया जाना, आदि) और तथा चित्र तथा अन्य दृश्य सामग्री ।

22. पता लगाइए कि 15 अगस्त 1947 के बाद हिंदुस्तान के कौन से हिस्से विदेशी शासन के अधीन रह गए थे । उनको कब और किस प्रकार विदेशी शासन से मुक्त कराकार स्वतंत्र भारत का अंग बनाया गया ?

Scanned with CamScanner

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING
1235